

बि हारौ
का
नया मूल्यांकन

२२६६

डा० यच्चन सिंह

हिन्दी प्रचारक, पुस्तकालय
वाराणसी-१



गिर तेँ छँसै रसिक मन बड़े जहाँ हजार ।

बहै सख पसु-नरन कौ प्रेम पयोधि पगार ॥

पट्ट पौलै मसु कौकरै सपर परेदैं संग ।

सुसी परेवा जात नै एके वही बिहग ।

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक में बिहारी सतसई का मूल्यांकन करते समय तत्कालीन सामंतीय परिघेय को बराबर दृष्टि में रखा गया है।

बिहारी बरबार में रहते थे पर उनको बरबारी नहीं कहा जा सकता। उनमें आदु की प्रश्रुति नहीं थी वे बेप-भूपा रहन सहन घान-बान घादि में किसी सामंत-सरदार से कम न थे उनका दृष्टिकोण पूर्णतः सामंतीय का भी सतसई के कथ्य तथा शैली यह सतर्कता और सज्जा में अभिव्यक्त हो उठा है। उनके प्रेम नारी संबंधी भाव नाई-संबंधी बिचार सभी पर सामंत-कवि की छाया है बरबारी कवि की नहीं।

इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने पर ही सतसई का सम्यक आकलन किया जा सकता था। इसके लिए भी सतसई का ही साधन माना गया है। इससे सुविधा भी हुई। तत्कालीन परिस्थिति और राजनीतिक स्थिति के नाम पर वही से इतिहास के दल-बीस पृष्ठ काटकर बिपटाने नहीं पड़े। 'नई समीक्षा' का आग्रह भी कुछ ऐसा ही है।

बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि मान खेन का दुष्परिणाम यह हुआ कि उनकी आलोचना भी रीतिबद्ध दृष्टि से की जाने लगी। इस लिए सब पर नए सिरे से बिचार करना आवश्यक था। इस चिन्तनसे मैं मैने पुरानी माध्यमों पर बोझ-बहुत गया संस्कार कात्मे का भी प्रयत्न किया है। इसमें बोझी सफलता को भी मैं बड़ी सफलता समझूंगा।

हिन्दी-विभाग

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी

रञ्जन सिंह

विषय सूची

१	पैठि-काय का रूप	पृ० ४०
		१-१०
२	परंपरा और परिसीतल	११-२६
३	✓ मिहरी के प्रेम का स्वरूप	२७-४४
४	✓ नृपति का मय व्यंजन	४६-६४
५	✓ अमिहरी के प्रत्यय	६५-९१
६	✓ व्यंजन और सत्ताई	९२-१००
७	✓ मय	१०१-१११
८	✓ मुक्त-प्रेम	११२-१२१
९	✓ <u>मिहरी का देव हुआ सम्राट</u>	१२२-१३०
१०	प्रेम का बीज और मिहरी	१३१-१३६

विहारो का नया मूल्याकलन

ऐतिकाव्य का हेतु

मंसूख के प्राचायों ने सामान्यतः प्रतिभा व्युत्पत्ति और सम्पाद को काव्य का हेतु माना है। पर कुछ प्राचायों ने केवल प्रतिभा को ही काव्य हेतु कहा है। एडगेटर का कहना है कि 'सा (शक्ति) केवल काव्य हेतु रिति सामाजिक'। वाग्भट्ट ने अपने 'अलंकार-निर्णय' में लिखा है—'प्रति मैव च कवीना काव्यकरमकारणम्'। व्युत्पत्त्यस्यामी तस्या एव संस्कार कारणो न तु काव्यहेतुः। अर्थात् प्रतिभा ही काव्यकरण का कारण है व्युत्पत्ति और सम्पाद उभयक संस्काराकारक हैं। एडगेटर अवस्था का स्वर भी इसमें भिन्न नहीं है।

भट्टनील ने 'काव्य कोश' में नवनवोपगमादिनी प्रज्ञा को प्रतिभा नाम दिया है। 'भोचन' के अनुसार धूर्तवस्तु निर्माण तथा स्थापना आदि मीन्द्र्य काव्य-निर्माण-यथा प्रज्ञा प्रतिभा है। वह धूर्तवस्तु का नवीन रूप में उद्भव करती है। प्रत्येक परीक्षा को वह अर्थों में संयुक्त करती है। नवि में नवीन बुद्धि का सङ्गण करती है। नवीन आशावली में नया या मज्जा है कि कवि धर्तुओं के नवीन संबंधों को इस रूप में व्यञ्जित करता है जो सामान्यतः अनुभूत और अज्ञेय से। काव्य-सर्जना का मूलभूत श्रोत प्रतिभा है। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि प्रतिभा का विवेचन करते

विहारी का नया मूल्यांकन

समय भाषायों की बस्तुमूल्यी दृष्टि मुक्त नहीं हुई है बर्बरबस्तु के तबीन हंग से जस्तेय पर बल देना इसी दृष्टि का द्योतक है। केवल प्रसन्न पर्योजना पर मुग्ध होनेवाले विद्वानों को समझ लेना चाहिए कि भाषायों ने उसका महत्व तभी धीका है जब वह नए शब्दों से संयुक्त हो। काव्य का गौर्द्व-यस—रस—तो यही के काव्य का परम साध्य रहा है। प्रतिभा धीमेधीमे जन की बहुत कुछ समानाधी है।

'लोकसात्य काव्येषु निपुणता व्युत्पत्ति —लोक सात्य धीर काव्य म निपुणता प्राप्त करता ही व्युत्पत्ति है। भारतीय भाषायों ने व्युत्पत्ति को काव्य का मुख्य हेतु नहीं माना है। भाषाव मंगल जैसे शब्दों के भाषायों को प्रपन्न ही समझना चाहिए। पर इससे इतना स्पष्ट है कि कुछ लोग ऐसे भी थे जो व्युत्पत्ति को ही काव्य का हेतु मानते थे। धरम्पु ने भी व्युत्पत्ति को ही काव्य का प्रधान हेतु स्वीकार किया है। पर परबर्णी भाषायों ने इस कारण का मान्यता नहीं दी।

जो हो यह सर्व सम्भव है कि काव्य का मुख्य हेतु प्रतिभा ही है पर लोकसात्य धीर काव्य की निपुणता बानों प्रतिभा के पोषक है। पोषक तत्वा की प्राप्ति के समान जे पोष की उपार्थता म सचेत हो सकता है। यह भी संभव है कि कभी-कभी विशेष परिस्थितियों के कारण व्युत्पत्ति प्रतिभा पर हावी हो जाती है। कभी तो ऐसा होगा कि परिवेक्षण शब्दों के कलस्वल्प कवि की प्रतिभा क्षीय होगी बीज पक्षी है कभी प्रतिभा की कमी की पूर्ण कवि व्युत्पत्ति ने करने की कोशिश करता है। रीतिकालीन कवियों में प्रतिभा की कमी नहीं थी। उस काल के सभी प्रतिनिधि कवि प्रतिभा सम्पन्न थे पर अपने बालावरण के कारण उन्हें व्युत्पत्ति का विशेष सहान लेना पड़ा। इसीलिए वे रसावेश की धरोहरि स्थिति के मुखन में उ समान नहीं सिद्ध हो सके बितने जयत्कार की सर्वना में।

ठाकुर ने केवल धम्पासी कवियों की जिसी उठाठ हुए सिखा है—

सीखि जीबो मीन युग खंडन कमल मैन,
सीखि जीबो जल की प्रताप को कहावो है।
सीखि जीबो कल्पवृक्ष कामधेनु वितामनि,
सीखि जीबो मेघ की कुबेर विरि भावो है ॥

ठाकुर कहत पाकी बही है कठिब बात
पाकी नहीं मूख बौजियत बाबो है ।
बैज सो बनाय घाय मैलत समा के बीच
बोगव कबित कीरो रोख करि जागो है ॥

रीतिकान्त में जैसा कि प्रत्येक काम में होता है, तुलसीदास कवियों की प्रशिक्षणा हो गई थी। वे केवल कुछ रटी-रटाई वस्तुओं को भरकर कविता का प्रभाव करते थे। किन्तु प्रतिभा के समाय में सच्ची कविता का निर्माण नहीं हो सकता।

पर ठाकुर ने ही एक दूसरे स्थान पर कहा है—

ठाकुर सो कवि भाबत मोहि की राजसभा में बहूपन पावै ।
पंडित धीर प्रवीन को ओइ बिच हरै सो कबित बनावै ॥

पंडित धीर प्रवीण की व्याख्या से हम फल के कवियों की मनोवृत्ति का पता लग जायगा। पंडित का ध्येय एक बेरा होता है और वह ध्येय किसी बिलुप्त के द्वारा उसे तोड़ नहीं पाता या यों कहिए कि वह स्वीकृत मान्यताओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेता है। जीवन धीर ध्येय को वह इन्हीं के माध्यम से देखता-सुनता और पढ़ता है। वह मात्र धीर ध्येय द्वारा ही कोई सीमा पर ही चलता है। उसके लिए स्वामनुभूत सत्य का परंपरापुनरोदित मूल्यों के साथ कोई महत्व नहीं होता है। प्रतिभाधारी के लिए प्रासंगिक नहीं है कि वह स्वीकृत मान्यताओं का विरोध ही करें पर यदि नए मूल्यों का स्वीकार करने में वे धन्य होते हैं तो वह उन्हें प्रस्वीकृत कर लेता है। वह कवियों—नामांकित साहित्यिक सत्री प्रकार की कवियों—का विरोधी होता है। वह पंडितों के साथ अपने व्यक्तिगत सहज सामंजस्य स्थापित करना चाहता है जब कि पंडित अपने संस्कारों में निहित अपने व्यक्तिगत की निंदी भीनाया में जकड़ जाता है।

प्रवीण विद्वान् का दूसरा नाम है। जो जीवन मानसिक के दौरान में कुछ ऐसी धारणाओं कायमे से कुछ ऐसी मूल्य का परिचय देने से कि उनस्थित जन समुदाय समग्र हो जाय या वे विश्व की मंशा पाते थे। वे धनुरी वालों को तसाज में जराह रहने के जिनके अवधारणा का समीक्षा करते थे। वे पंडितों और प्रवीणों की दार के चक्रे को थे। केवल रीतिरिवाज कवि ही इस परिपाटी के कायम नहीं थे। स्वच्छ काय धारा के कवियों को भी उनका

बिहारी का नया मूल्यांकन

क्रम मोह नहीं था। पर इन कवियों ने नए मर्यादों को नवीन ढंग से परखा और एक हद तक बहुत ही कवियों से अपने को मुक्त भी रखा।

कहा जाता है कि तत्कालीन कवियों ने विविष्ट ढंग की जो साहित्यिक कड़ियाँ अपनायी उसके लिए बहुत कुछ उनका सम सामयिक बातावरण वासी है। यह बातावरण सामंतीय का और नबि सामंती के प्रभावित थे। इसलिए उन्हें उनकी कविता का बहुत अधिक ज्ञान पचना था। यही पर यह सवाल भी उठता है कि क्या कालिदास राजाभिषेक नहीं थे? क्या मनुष्यता की किसी राजा की छाया में नहीं पलना पड़ा था? ऐतिहासिक दृष्टि से वह युग भी तो सामंतीय ही था। वे दरबार में रहते थे पर उन्हें दरबारी नहीं कहा जा सकता। उनके सामयिक स्वयं प्रतिभाशाली मनुष्य थे। वे काव्य को हल्के मनोविनोद की सामग्री नहीं समझते थे। भोज को ही भीषण को हल्के मनोविनोद की सामग्री नहीं समझते थे। भोज को ही को प्रशंसा दिया है। तो ऐसे लोग मला कवियों को कैसे अपने मनोमुक्त राजाई सिद्धांत के लिए बाध्य करते। रीतिकान के इसी राजाओं को मुक्तोपयोग के प्रतिष्ठित और कोई काम नहीं रह गया था। मुमम सम्राटों की शीतल छत्र-छाया में निश्चय बिनास में घाटंत मग होना ही उनकी दिन चर्या थी। दरबार में जाने-जाने से उनसे संबद्ध होने से ही कोई दरबारी नहीं हो जाता। दरबारीयम एक मनोमुक्ति है जिसका विकास बहुत कुछ दरबारों की प्रकृति और व्यापक की प्रकृति पर निर्भर करता है। इन दरबारों के पवित्र और प्रवीणों के अनुकूल अपने को बालना कवियों के लिए अनिवार्य हो गया।^१

स्वामी लैकन बार्ड वीट्ट का कहना है कि 'अभिजात वर्ग का सरस्य धारण में रहने का प्रयत्न होता है और उस प्रकार का प्राक्धान प्रबल नहीं करता जिससे व्यक्तित्व की उन्नति होती है। अभिजात वर्ग का सरस्य विभिन्न वेलों तथा क्रीडाओं को जीवन का मुख्य व्यापार बना लेता है और शरीर की स्वच्छता तथा वैयक्तिक पर विशेष ध्यान देता है। स्थिति से

१ लिटिल के लिए देखिए—डा लैकन वीट्ट रीतिकालीन कवियों की प्रे-
मिका, भा० ३० पृ० १००-१०१

अवधार करने समय रोमान का अनुभव नहीं कर पाता ।^१ इसे दूसरे राज्यों में यों कहा जा सकता है उनका जीवन सर्वम अवधीर और क्रीड़ापरक होता है इन जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति रीतिवाज की कविताओं में मिलनी पड़ी है ।

अभिज्ञान कर्म के इन्हीं लोगों को 'रीतिकाम्यों' में 'रमिक' कहा गया है । ये रमिक या सहृदय मरुत और अभिनव क रमिक और सहृदय की अर्धवत्ता को चुके थे । सहृदय की व्याख्या करते हुए अभिनवगुण ने 'लोचन' में लिखा है—'येषां वनध्यानुशीमानाम्यासवसाङ्गिगरीभूते मनोमुक्ते कर्षणीय तन्मयी मवनयोम्यता ते हृदयमवाहनाह सहृदयाः' । जिन्हु काव्यानुशीमम क सुनत धम्माम द्वारा मनमुक्ता को बिहादीभूत करने का अवसास रीतिवाजीन सहृदयों का बर्ही ! वे काव्य की आत्मकारिक उत्तिधों में ही उस का अनुभव करते थे । बिहादी क 'रमिक' की अनिदिधि का निरीक्षण हमारे मनम्य को और की स्पष्ट कर देगा—

चित्त तु चटकत चटवि-विभु, रमिक, सु रस न, विषाख ।

अनत अनत चित्त चित्त द्वित्तु चित्त सङ्कुचत कठ, काख ॥

इन पर रत्नाकरबी की टिप्पणी देखिये—

'नामिरा नायक को धम्य स्त्रिया के साथ हँसत बोलत खेलकर कुछ रङ्ग हुई है, जिस पर नायक ने उससे कहा है कि मैं उन स्त्रियों से कुछ प्रेम संबंध स बातचीत नहीं करना या ग्रन्थ केवम आमार प्रमोद में उलझ जा । यह कहने समय नायक का मन अपनी बनावनी बात पर कुछ मधुचिन्त हुआ । यह संबंध उसकी चप्ता से ललित करके अब मन्की बात निर्धारित करके भाविका कहनी है—

'हे रमिक ! (तुम) जो 'कन्वि' (येम की काज प्रम के प्रभाव) बिना घटवन (धम्य स्त्रियां में उसप्रमे) करने हो (बहु घटवना) रम नहीं है (प्रम के कारण नहीं है) ग्रन्थ 'लियाम' (लियवाङ्ग मात्र) है हे नाम [यदि तुम्हारा यह वचन सच है और तुम मनरापी नहीं हो तो फिर तुम यह बतलाओ कि 'निन'] 'निन' (निन्यप्रति) 'घमन' 'घमन' (धम्य धम्य स्त्रिया के) हिनो से चित्त में मधुचिन्त क्यों होने हो [हे रमि

तो तुम्हारे कथनानुसार केवल जिसबाड़ सर्वश्री है, कुछ प्रेम सर्वश्री नहीं कि संशोध के कारण हों।]

‘नायिका नायक को ‘रसिक’ धर्म से संबोधित करके वह व्यंजित करती है कि तुम जो धर्म स्थितियों से घटकने का कारण जिसबाड़ मात्र वतलाते हो वह मिथ्या है क्योंकि तुम ही रसिक हो बिना रस के घटकनेवासे नहीं।’

दस बोहे का दूसरा धर्म लिखते हुए रत्नाकरजी ने विपरीत सधना से रसिक का धर्म धरसिक भी माना है। नायक और नायिका दोनों अपने अपने स्थान पर ठीक हैं। नायक का यह कहना कि नित्य धर्म धर्म स्थितियों में घटकना केवल जिसबाड़ है कुछ प्रेम नहीं उसकी वास्तविक स्थिति का चोकर है। रीतिरामीन नायको का प्रेम अभिजात बर का वह प्रेम है जो कीड़ापरक है रोमैटिक नहीं। यह वह प्रेम नहीं है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निमज्जित करने के लिए व्याकुल हो उठता है जिसमें वह विरल व्यापी अहमप्रसार का प्राकाशी बन जाता है। नायिका का कबल भी अपने स्थान पर अनुचित नहीं है। रसिक को उस कीड़ा में ही रस मिलता है धर्मपा घटकता ही क्यों? मौरा भी तो विभिन्न पुष्पों से रस एकत्र करता है। पर वास्तव में प्राचीन परिभाषा के अनुसार वह धरसिक है क्योंकि उसका प्रेम अस्थिर, बहुस्वीयायी तथा प्रेम की पावन मर्यादा को वृषित करनेवाला है। किन्तु वस्तुतः रीतिरामीन का रसिक बही है। मुख्य रूप से बिहारी की समस्त भावाभिध्वतियों का केन्द्रीय धारण बही है।

यह रसिक नगरी का निवासी है उसकी परिप्लुत बहि एक विशेष सामरिक संस्कृति के ढाँचे में बनी है। इस ढाँचे से पृथक अन्य संस्कृति को वह हम दृष्टि से बैचता है। वह स्वयं अपनी संस्कृति की अभिवृद्धि का अभिलाषी नहीं है वह तो एक परिपाटी बद्ध संस्कृति का चोकर है। संस्कृतियों का विकास बृहत्तर जनत के मय मूर्त्यों से संपुक्त होने पर ही समब है। सेकित सामंतीय संस्कृति ने अपने को ऐस बेरे में बन्ध कर रखा था जो सड़ाप और बृटम के कारण ताबजी मूर्त हो चुकी थी। पर सामंत उससे संतुष्ट थे। वह संशोध ह्यासोन्मुखता का सबसे बड़ा बिह्व है। नायक संस्कृति

के पोषक बिहारी ने ग्राम्य संस्कृति का जो चित्रण किया है वह उनकी योंही हुई दृष्टि का ही चोपक है।

ग्रामीण मामिका को तुम्हें साव-गमना का उत्प्रेष करते हुए यद्यपि बिहारी ने उसकी माँगता ब्यराए हुए शरीर और 'करे करोबनि' की ओर से अपनी दृष्टि नहीं फेरी है फिर भी 'बैबारी' सम्प से उसके प्रति उनके मन का मास व्यक्त हो जाता है। ऐसे लोगों को गाँव में बसना मना जैसे अशुभ लग सकता था। नगरो के विविध विधास का गाँवों में उपलब्ध हो सकना कहाँ संभव था। एक नगर निवासिनी अनुग स्त्री गाँव में जा बसी है। उसकी मूर्खता पर व्यंग्य करते हुए बिहारी कहते हैं—

बागरी विविध विधास उबि, बसी गैबेबिब मीहि ।

मुहनि में गतिनी किरी, हुम्मी रे अठिआहि ॥

नागर संस्कृति में प्रवीण मनुष्यों के सम्मुख ग्रामीणों की हँसी उड़ाते हुए बिहारी यथाते नहीं—

ये न पहाँ बागर बने, जिव आहर तो आब ।

फुलबी अलहुम्मी मयो, गैबई गाँव गुआब ॥

×

×

×

कर छै सुँचि सराहि कै, रहै सपे गहि भीन ।

गाँबी गैब गुआब को, गैबई गाहक भीन ॥

पर ग्राम्य संस्कृति का उद्घास करते हुए भी इन कवियों ने ग्रामीण मामिकाओं के प्रति धरती रसिकता में कमी नहीं जाने दी है। वेब का 'जाति विधास' में भरभूजित किरामिनी काष्ठिन सब की सब अपूर्व सुन्दरी है। उनकी आतीव बिरोपनाओं पर इनकी दृष्टि न आकर उनके 'अगमये यौवन' 'उठीहो मुच रसीमपन भावि उम्मादक धबयवों और मुगों पर दितोप रूप से केन्द्रित हुई है। यह इनकी नागर बनि और सामंतीय संस्कृति का चोपक है।^१

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रीतिकवियों में प्रतिभा की कमी नहीं थी पर एक विशेष मनोदृति के कारण (इरकारी मनोदृति) ने उनका

१ का बचन सिंह रीतिकालीन कवियों की लेखनीयता का प लवा कातो

उतना उपयोग न कर व्युत्पत्ति पर अधिक आधारित हो गए। यदि ग्रंथों की प्रशंसा का प्रयोग किया जाय तो कहना होगा कि हमारी कविता में कल्पना का उतना वैभव नहीं दिखाई पड़ता है जितना पैम्पी का। हमारे लिए सत्कामीन सामंतीय वातावरण का कम योग नहीं माना जा सकता। यह सामंतीय संस्कृति काफी ह्रासोन्मुख हो चुकी थी उसका अपना चेरा बहुत ही सँकरा हो गया था। दूसरी संस्कृति का उपहास करना इस बात का चोकर है कि वह अपनी सर्वना-शक्ति लेकर एक पूर्ण निर्मित साम्यवादी में बदलकर चला रही थी। ऐसी स्थिति में कविता को भी नेंवना पड़ा। फिर भी अपने समसामयिक जीवन की—सामंतीय जीवन की—अभिव्यक्ति बिहारी ने पूरी ईमानदारी से की। बिहारी ने परंपरा का निर्वाह करते हुए उसमें कुछ अपना भी जोड़ा मुक्तक-काव्यगत मनु संर की सर्वोच्च ऊँचाई प्रदान किया। प्रेम-अभिव्यक्ति में कुछ पुरानी कुछ नयी उक्तियाँ भी लगी। अभिव्यक्ति की व्यंग्यता को और भी मार्मिक बनाया। इन व्यापकतम विवेचनाओं की दृष्टि से समस्त ऐतिहासिक न बिहारी अग्रणी है।

परंपरा और गतिशीलता

सामान्यतः आज परंपरा को देखकर चलनेवाला गणानुमानिक और उससे उन्मुख होकर चलनेवाला प्रतिस्पर्धी माना जाता है। यह जिनका सारक व्यवहार में सत्य दिखाई पड़ता है उनका ही वाक्य कहें और परंपरा में भी। भुवन की महीनता और मौमिकता के बचकर मैं पड़े हुए आज के धनक कबि त्रिम उन्मुखता की मृष्टि पर रहे हैं वह किसी सहृदय में छिपा नहीं है। हमका मुख्य कारण यह है कि वे रूढ़ि या गणानुमानिकता को परंपरा का पर्याय मान लेते हैं जबकि उनके धर्मर की समझ में भूल करते हैं। यदि परंपरा का धर्म बकर है पर वह परंपरा का समित्त धर्म है। परंपरा में और भी बहुत कुछ है। जब बामिदान ने कहा कि 'पुराणमिदं न साधु सर्वम्' तो उनका मतलब बदाबिन् परंपरा के रुढ़ि तत्त्व में ही था। यह रुढ़ि तत्त्व साधु नहीं माना जा सकता। ये रुढ़ियाँ सब समय रुढ़ियाँ नहीं रही होंगी प्रारंभ में और उनके बहुत समय बाद तक उनका पास प्रतीकण रहा होगा। परंपरा के साधु-समाधु तत्त्वों का धमन करने के लिए बिदेक की आवश्यकता होगी है। हमका हारा ही हम चाहें तत्त्वों की स्वीकार्य तथा अशाह तत्त्वों को अस्वीकार्य करार देते हैं।

किसी वेस के साहित्य स्वयं महत्त्व भावि की विशिष्ट परंपरा होती है। व्यक्ति का इतिवृत्त उस परंपरा को एक कड़ी के रूप में ही धातु होगा—उसका मूल्यांकन करने समय धारक होगा कि उत्तमोत्तम मूल्यों परंपरा को बराबर ध्यान में रखा जाय। इस तथे जोड़ के कारण परंपरा की स्थिरता घोषित हो जाती है और धारक को नए दिरे से मूल्यांकन करना पड़ता है। ऐसा करना सभी जगहों समझा जायगा जब नवीन इतिवृत्त के कारण परंपरा में कुछ नया जुड़ा हो और वह नया सभी कुछ मकल है जब समूची परंपरा की चेतना रचयिता को प्राप्त हो।

टी एन० इमियट ने परंपरा को बहुत ही व्यापक और संकीर्ण महत्व दिया है। यह किसी को बिरामल में नहीं मिलती। इसे परिष्कृत पूर्वक धारित करना पड़ता है। इसके मूल में एक ऐतिहासिक चेतना अनुस्यूत है। इमियट के मतानुसार जो पच्चीस वर्ष (गणहत्यापीछी) के बाद कवि बना खूना बाह्या है उसके लिए हम चेतना की उत्पत्ति धारक है। ऐतिहासिक चेतना का तात्पर्य है धर्म के 'व्यक्ति' और उसके 'वर्तमान' के प्रति पूर्ण जागरूकता। इसे दूसरे चरणों में जो कहा जा सकता है कि परंपरा के अस्तित्व इन्हीं के साथ साथ वर्तमान जीवित इन्हीं के प्रति सचेत खूना कवि का कर्तव्य है। उसे केवल अपने युग के प्रति ही संवेद नहीं रहना होगा बल्कि समूची नव्य परंपरा के प्रति संवेद रहना होगा।

बिहारी ने धारा की दीर्घावामी जिस सनसई की रचना की उसकी परंपरा काफी पुष्टी है। बिहारी उसी परंपरा की एक कड़ी के रूप में धातु है।

बिहारी की ऐतिहासिक चेतना के प्रति हमें नही

नया सतसई रीतिनय प्रकृत किया जा सकता है। इस चेतना को उन्होंने

काय है ? बिरामल में नहीं पाया जा बल्कि परिष्कृत पूर्वक

धारित किया जा सकता है। हाँ वह दूसरा सवाल है कि उस परंपरा में उन्होंने किन्हीं कविता को ग्रहण किया और किन्ते प्रबलमान साधु चरणों की। क्या उनकी सतसई ने भारतीय काव्य-परंपरा में कुछ ऐसा जोड़ दिया कि समूची परंपरा का पुनः सर्वजन धारक है ? बिहारी सनसई को लेकर चलने वाले विचारों के संदर्भ में हम प्रश्नों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

यद्यपि पं० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी की धारकता करते समय बाद केनेवामी धारकतामक पद्धति ही अपनाई फिर भी उस विमर्श में एक

महत्त्वपूर्ण काम यह हो गया कि बाबा सत्यगती धामी सत्यगती अथवा धनक धामि की गायधर्म और श्लोकों के समानांतर रहे जानेवाले बिहारी के गेहों की उड़रनी प्रस्तुत हो गई। बाब में कुछ धालोचको में बिहारी में धम्मगु करण की प्रवृत्ति के न होने की सराहना की पर बीच बीच में वहाँ धम्मकरण नहीं है वहाँ भी धम्मकरण सिद्ध करने की नीतिधना भी बिकलाई। ऐसी स्थिति में धर्मा जी की ऐतिहासिक बनना का विवेचन अपना महत्त्व रखता है।

बिहारी को रीति-रिवाजों में रखने का परिणाम यह हुआ कि उनकी रचनाओं में नीति-नैतिक विकास की बुझती मच गई। यही तक कि कई ते गई पुस्तकों में भी इनके लिए काफी पृष्ठ देने पड़े। बिहारी की नीतिबद्धता पर प्रश्न बिहारी समाजे हुए हैं। हजारी प्रभाव डिपेरी ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सवाल उठाया है। 'साधारणतः बिश्वास किया जाता है कि इस बलि ने अपनी सतसई की रचना रीति-काव्य की वृत्ति से ही की थी क्योंकि उनका दोहों को देखकर यही अनुमान होता है कि किसी न किसी नायिका का सख्त उनका मन में अवस्थित उपस्थित था। पुराने सहृदयों को भी यह बात मगी थी (क्योंकि कभी-कभी इन दोहों को नायिका भेद के धम्मक से मजाया मया है) और नए सहृदयों को भी अनुमति हुई है। परंतु इस बात में कबल यही सिद्ध होता है कि बिहारी के प्रसंगिक रीति मनोवृत्ति के महत्त्व के। स्वयं बिहारी की रीतिबंधों के प्रभेद जानकार रहे होंगे हममें सन्देह नहीं किन्तु उनके प्रत्येक दोहे में किसी न किसी नायिका का साथ सेना यह नहीं सिद्ध करना कि वे रीतिबंध मिला रहे थे। धम्मक धम्म के लोभ नायिका भेद की कर्मा करनेवालों के बहुत प्रिय रहे हैं परंतु इतीमि यह नहीं कहा जाता कि धम्मक धम्म नायिका भेद का संघ है। हमारी प्राज्ञ भाषा में किसी हुई बाबा सत्यगती और गोवर्धन की संस्कृत भाषा में किसी हुई धर्मा गण धारी के प्रत्येक पद में किसी न किसी नायिका का उदाहरण लाया जा सकता है और सोचा गया है परंतु इन पुस्तकों को कोई रीति संघ नहीं बनता।'

बिहारी सतसई की नीति संघ सिद्ध करने के लिए मुख्यतः दो बातें प्रस्तुत की गई हैं—नयधिया वर्णन और नायक-नायिका-भेद-विवरण। अब बाबा इतनी बालबाला का पना लगाएँ। साक्षात् भगवान्‌जी ने बिहारी-बोधिनी में

दोहों के कुछ अनुक्रम बाँचे हैं जिनमें उपर्युक्त दोहों बातों का सम्मिश्रण हो जाता है। पहले मल-घिल बर्जन का भीक्षित ही देखें।

बिहारी बोधिनी के अनुसार मलघिल का कम पहल शतक के ३३वें दोहे से प्रारंभ होता है और फिर दूसरे शतक के ११३वें दोहे तक चला जाता है। इसके पंतर्गत बिन कई दोहों तथा आसूषकों का वर्जन आता है वे निम्नलिखित हैं—

केवल मुख पर बिहारी सज देणी टीका बिरी भीड़ नयन नयन-सैन
मासिका कपोल सवध धवर बिबुध बिटीना और मैहरी।

किस वस्तु के वर्जन में कितने दोह रहे गए हैं उनकी कमबख्त तालिका देखिए—

अंग	दोहा	अंग	दोहा
केस	४	मुख	१
मट	१	बिबुध	२
बधी	१	हास्य	१
टीका	१	दुःख	१
बिरी	७	कटि	२
भीड़	१	बन्धा	१
नयन	३३	मारवा	१
मासिका	९	ऐंसी	२
कपोल	१	पापन	१
सवध	१	धनवट	१
धवर	१	पगवल	१
बिबुध	४		
बिटीना	२		

क्या इसे मलघिल बर्जन माना जा सकता है? इसमें कुछ अंगों के वर्जन में व्यतिक्रम हो गया है और कुछ धन छूट गए हैं। व्यतिक्रम के संबंध में रीतिप्रेमी महारथ कह सकते हैं कि इसके लिए बिहारी नहीं वाला जी बोधी हो सकते हैं। लेकिन इस वर्जन में दाँत घीबा और हाथ जैसे प्रमुख अंग छूट गए हैं। इसके लिए कौन बोधी ठहरेगा? इससे स्पष्ट है कि मलघिल बर्जन की दृष्टि में रखकर बिहारी में मलघिल-वर्जन नहीं किया है।]

नायक-नायिका-भेद की परीक्षा करन पर भी हम उपर्युक्त निष्कर्ष पर ही पहुँचते हैं। एक न जिस बोहे में जिस मनोमूल नायिका को बूँद निकाला है वह हमारे को माग्य नहीं है। सभी इस ही में प्रकाशित पुष्पक बिहारी और उनका साहित्य में मध्या का उदाहरण पत्र करते हुए निम्नलिखित बोधा उद्धृत किया गया है—

तुरत न कुछ बिच बंशुकी सुपरी सारी सेत ।

कबि चोकरु के बरब की प्रगट दिखाई देत ॥

भाषायों में मध्या की स्थिति मुग्धा और प्रौढ़ के बीच मानी है। इसमें सज्जा की कुछ कमो और काम की कुछ अधिकता होने लगती है। हमारे शब्दों में हमें सज्जा और काम समान रूप में रहने हैं। क्या उपर्युक्त शब्द से इसी प्रकार की नायिका की व्यवस्था होगी? भाषायी ने इसे बंशुकी के वर्णन के अन्तर्गत रखा है और रत्नाकर जो न अनुचित व्यवस्था के अन्तर्गत। उक्त पुष्पक से ही प्रौढ़ का एक उदाहरण लीजिए—

कुच गिरि बहि पति पकित हूँ बड़ी हीरि मुँह बाह ।

भिरि न रही परिधै रही गिरी बिभुष की गाह ॥

प्रौढ़ काम कला में क्षति प्रयोज्य मानी जाती है। मध्या की अपेक्षा उसमें सज्जा की भावना और भी कम हो जाती है। वह प्रिय के साथ बान-बाँझ में निस्संकोच संलग्न होकर पड़ती है। मध्या यह बोधा जिस प्रकार प्रौढ़ का उदाहरण माना जा सकता है। अंतःपरिवर्तन को ही दुष्टि में रखकर नायिका-भेद का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। मुग्धा मध्या प्रौढ़ा वय अव्यवस्थाएँ ही नहीं हैं बल्कि इनके मूल में सज्जा और काम विचार का मूल-विषय भी अनुस्यूत है। अधिक वय की होकर भी अपने अंतः परिवर्तन के बावजूद भी कोई मध्या मुग्धा या प्रौढ़ा मध्या हो सकती है। इस तरह हमें किरीट भी समझना चाहिए। मनोवैज्ञानिकता का विचार न करन के कारण हम तरह की महबूबी का हो जाना स्वाभाविक है। यह सब कहन का मेरा उद्देश्य इतना ही है कि इस तरह मनमई में नायिका-भेद बूँद निकालना स्वाभाविक कहा जा सकता है। यदि ऐसा करना होगा तो इन बोधों के साथ समान जोड़ देना किमो से लिए कोई मुश्किल काम न था।

तो क्या बिहारी की ऐतिहासिक चेतना में सतसई की शीर्ष परंपरा का अनुशीलन—आत्मन संतिहिग है और वह उस परंपरा को धागे बढ़ाती है ? इसका भाषिक उत्तर पीछे दिया जा चुका है । फिर भी वही वह कहना प्रसंगत नहीं है कि बिहारी ने उस परंपरा को एक ढेंवाई ही । मुगीन बिबधताओं तथा एक शीर्ष काव्य-परंपरा के कारण उन्हें अनेकानेक रुढ़ियों को भी अपनाना पड़ा यह एक असंग बात है । बिन उद्गात्मक उक्तिओं के लिए बिहारी को कोसा गया है वे उन्हें परंपरा से प्राप्त हैं ।

बिन उद्गात्मक उक्तिओं के लिए बिहारी का बहुत कोसा गया है उस तरह उद्गात्मक उक्तिओं की भी बहुत सी उक्तियाँ उनके पूर्ववर्ती काव्य में परंपरा ही दिखाई पड़ती हैं—

(१) चूड़मुह प्रगाथी होइ छह मुनि क्योकि निहिचउ ।

सासावक बाध म्मन्निकउड बाह सकिउ संसिचउ ॥

(मुग्धा की स्वासाधि ने और बाध जल से तप कर चूड़ियाँ बूर-बूर हो जायगी । मुग्धा अपने गालों पर हाथ रख कर शोक मुग्धा ने बैठी हुई है । वह स्वाध की ज्वाला तथा बाध बनते हुए प्रभुओं के तप से जलनाचूर हो जायगी ।)

(२) बसदाबलि बिबडक भपुव बस उजमुव जाह ।

बसुह बिरह महाबहरी बाह गबैसह बाह ॥

(कार्त्त के कारण मायिका की बसदाबलि के बिरह की आशंका हो गई है । इसलिए वह अपनी भुजाओं को ऊपर उठाए हुए बनी जा रही है । ऐसा मतवा है मानो प्रायवस्तन के बिरह महोबनि की बाह से रही है ।)

अब बिहारी की कुछ उक्तियाँ देखिए—

(१) पछनु प्रगादि, बचनीनु बदि, बदि कपोल उदराउ ।

जैमुवा परि कृतिवा बिन्दु बसकुवाइ किपि आव ॥

(२) सुनह पकि मुँह माह बिसि छुँवै बसत बदि वाम ।

बिच बूँदे बिबही कदे बिपउ बिचारी वाम ॥

कविता और मान प्रसंगों की चर्चा प्रागे के अध्याय में की गई है ।

बिहारी ने बिबेदी प्रभाव को भी अपने हृदय से ग्रहण किया पर उसकी भी कुछ रुढ़ियाँ तो संस्था में कम ही हैं, सतसई में संघिबिष्ट हो गई हैं ।

फरसी-उर्दू साहित्य में उल्लिखित कठरे का हरिया होना कलेजे का नाक होना कुन-परधी आदि को भी बिहारी सपछई में रैना जा सकता है। हिन्दी के मुसलमान कवियों में यह परंपरा पहले से ही जमी आ रही थी। उसका प्रभाव मीरा जैसे मत्त कवियों पर भी पड़ा। उसे बिहारी का ग्रहण करना प्रस्थानाधिक नहीं कहा जा सकता—

गोपिनु कैँ प्रीसुबनु भरी सदा असोस, अपार ।

झार झार नै हूँ रही, बार बार कैँ बार ॥

उद्धव श्री कृष्ण से कहते हैं कि उज्जयिनी के प्रत्येक मार्ग में बार-बार के द्वार पर गोपियों के प्रीसुमा से भरी हुई कभी न सूखने वाली अपार नदी बग बई है। यनीमत यह हुई नाब जमान की व्यवस्था नहीं की गई।

मग सत्रुँ के एक छेर पर गीर करमाइए—

गीर से कठरे की गामिब को बजर की तो लुका ।

हम इसे कतरा गकत समझे थे हरिया है पही ॥

बोना में कितना साम्य है ।

बिहारी की एक दूरी उक्ति देखिए—

करी बिह देसी ठक गिब न दावतु भीष ।

शौर्ने हूँ करमा बज्रन, बाई कई व भीष ॥

कार्य का बड़ा ही सामान्यारिक दृश्य है ।

फरसी-उर्दू की परवर्ती परंपरा से इसकी तुलना कीजिए—

मर गया सदमए एक लुबिखे खब से 'गामिब'

नातबाबी से हरीके इमे ईसा न हुआ ।

यह प्रसिद्ध है कि ईसामसीह कुछ शम्श—कुम व इन्निस्ताह—कहने से धीरे उसके प्रभाव से मुरों में प्राण जा जाते व। गामिब का अर्थ है कि मैं दनना बुझता हो गया था कि प्रियतम कपी मसीह के हाठ कुछ कहने की हिंसे नहीं कि मैं उनकी चान से मर गया ।

कहना न होया कि गामिब ने बिहारी को बहुत पीछे छोड़ दिया। यह भी भी तो गामिब के गुराणों की परंपरा ।

सुकुमारना का एक उदाहरण और बेरुन में हम प्रणय को समाप्त करेगा—

छाये परिले हैं वरसु सदैव हाथ पुखाइ ।
ममकठ हिऐ गुलाब के रेंगा रेंगीबत पाइ ॥

छाये पड़ने के डर में माइन नायिका के पाँवों को हाथों से छूने में हिचकिचाती है ।

घोर पानिब के माथूरु की नजानत देखिए—

इस नज्माकट का बुरा हो, वो सके हैं तो बचा,
हाथ धावें तो उम्हें हाथ बसावे न बने ।

यहाँ भी कदाचित् छान पड़ने के डर से ही माथूरु का स्पष्ट नहीं किया जाता ।

परंपरा का यदि धंधा बिहारी में एक प्रकार से घोर मिश्रण है—मित्री जानकारी और पारिव्य प्रदर्शन के रूप में । ऐतिहासिक बेगना के लिए यह

सापेक्षक है कि परंपरा में पारिव्य ज्ञान-विज्ञान की
पारिव्य दृष्टि से मज्जो जानकारी प्राप्त की जाय पर उसका उपयोग
मित्री जानकारी का प्रदर्शन के रूप में नहीं होना

चाहिए । यह पारिव्य और जानकारी जब तक चतनामय नैरन्तर्य का अनिवार्य धंधा नहीं बन जाती तब तक कवि की कारविवी प्रतिभा उसका काव्याभित उपयोग नहीं कर सकती । बिहारी के कुछ दोहों के आधार पर उन्हें छोटी का धमिलन बीच या ज्योतिषी मान लेना धर्म का धनर्ष कर बैठना है । यह बात पर इतनी बिठ पिए गई है कि उसका जसेब भी बासीपन की गंध से जाती नहीं है । कविता में जिस निर्व्यक्तिमत्ता की चर्चा की जाती है उसका मठमठ केवल मित्री समुच्चयों के समावेश नहीं हैं, बल्कि व्यक्तित्व से भी समावेश है । मित्री जानकारी या पारिव्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का धंध है इसलिए सच्चे कवि को—सोच हुआ की पहचान करमेबात कवि को—उससे समाहित होना होगा । इस प्रकार का पारिव्य प्रदर्शन साहित्य के जेम्सी भी धंध में धमिलदनीय नहीं कहा जा सकता । हिन्दी के कुछ ने उपम्यास जिनमें मनोविश्लेषण शास्त्र के सिद्धांतों का धंधा इतिहास के तथ्यों का बाहुस्य हो गया है उन्मकोटि की कृतियों में नहीं पिये जाते । गुमरीबास के प्रकृति-विषय में जो ज्ञानयुक्त धंधा धमिलन के रूप में जुड़ गया है यह काव्य-सौंदर्य को बिहृत कर देता है । कवि की अपनी मित्री विवेकताओं का धमिल साहित्य का धोमल उपकरण नहीं माना जा सकता । इस तरह के धकाव्योभित धंध बिहारी में देखे जा सकते हैं—

- (१) बड़त सई बेदी दिई छोड़ बसगुमी होतु ।
 तिथ बिहार बेदी दिई, अघिबिनु बड़त बड़ोतु ।
 (२) में कछि बारी दागु, करि राख्यो मिरधाद यह ।
 यह ३ सोगु-विदागु यह बिह बौराबि बई ।
 (३) तिथ तिथि ठफन किसीर बर, पुख बर सभ होतु ।
 काहु पुखन पाइबतु, बिस संधि संकोतु ।
 (४) सनि कउबख बर-मल अगन उपर्या सुदिन अयेहु ।
 बबो न रुपति है भोगि, कदि सुरेनु सच बंहु ॥

उपमूलक अंतरालों में यथिन बीचक और ज्योतिष के जिन मामूली मिश्रितों का सहारा लिया गया है उनका साम्य कुछ दृश्य ही है। पहले दोहे में कवि का मुख्य अभिप्राय बिही लगाने के कारण नायिका की बड़ी हुई सोना का वजन करना है। दूसरे में नायक के प्रति नायिका का प्रेम की व्यंग्यता उनका अभिप्रेत है तीसरे में एक संधि सन मीरम हो उनका मुख्य बर्ण है, चौथे में सुन्दर शरीर के मोम का जलाहूरी ही है। अहाँ पर सामान स्वयं साम्य हो गए हैं इसलिये समझ दोहे साम्य-मीरम में अछूने यह गए हैं और पाश्चिम प्रदर्शन उभर कर सामने आ गया है। कविता का मकसद पाश्चिम से नहो खरमना में है।

ये सब परंपरागत व कठिनी हैं जिनके कारण बिहारी का साम्य बुद्धिपूर्वक हो गया है। पर बिहारी की ऐतिहासिक चेतना के बने बत भी हैं जो उनके साम्य को पूर्णतः साम्य-परंपरा की धरोहरा धार्मिक परंपरा बनाम सांख्यिकता एताद और अमलकार-सम बनाने में मदद हैं। इन चेतना की छीक के न मकसदों के कारण जो साम्य अर्थात्परम या अज्ञानरूप विमल के लिए धार्मिक कवि की रचनाओं और पूजकों कवियों की रचनाओं में साम्य गोजने फिरने हैं उनकी समझ को क्या कहा जाय। गोरखजी तुलसीदास की 'नाता धूपाव निषमायम मम्ममम्' बलि को न उड़नेवाले लालों में साम्य में धार्मिक कर्तव्यों का लंबा-चोटा मेला प्रस्तुत किया है। बिहारी की इस हथकड़ी से कही गयी है। परंपरा की छोड़कर मौलिकता का कोई अर्थ नहीं है। ज्ञान बननेवाले में एक जगह विचार को मौलिक की संज्ञा दी है। पुरानी बातों में नवापन में धारणा ही मौलिकता है। धार्मिक-साधना का कहना है—

सुखपूर्व अपिहर्षाः कथ्ये एव परिग्रहात् ।

सर्वे नवा हवा भामि मधुमास इव हुमाः ॥

पहले के श्रवणों को एव संसार द्वारा नष्ट नवा देने में ही मौलिकता है जैसे मधुमास पुराने वृक्षों को नया बना देता है। टी. एस. इलियट इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में कहता है— "It involves a good deal which can be called taboo that this word is used in our time in an exclusively derogatory sense is to me a curiosity of some significance. We become conscious of these items or conscious of their importance usually only after they have begun to fall into desuetude as we are aware of the leaves of a tree when the autumn wind begins to blow them off—when they have separately ceased to be vital. Hoergy may be wasted at that point in a frantic endeavour to collect the leaves as they fall and gum them on to the branches but the sound tree will put forth new leaves and the dry tree should be put to the axe. We are always in danger in clinging to an old tradition or attempting to reestablish one of confusing the vital and the accidental, the real and the sentimental."

मधुमास में बीजन्त वृक्ष अपने जीवन चक्र को शुरू करते हैं उनके स्वान पर लाल लाल नए कोपल उगने में लग्न होते हैं। मृदु पत्रों को शालों से निपका देना परंपरा के मृदु चरणों की निपका देना है उन्हें पुनः स्थापित करने का प्रयास है। पर वास्तविक कवि बीजन्त और शीतल वास्तविक और भावुकतापरक चरणों की पहचान में बल होता है। इस प्रकार की बकता ज्ञान करना ऐतिहासिक चेतना प्राप्त करना है। बिहारी में इसकी बहुत कमी नहीं है। यह दूसरी बात है कि सर्व आलोचक इन चरणों को न पहचान कर बिहारी के मन्त्रे बोलें।

मत्स्यजनों की परंपरा में जो पहला घंटा बिहारी देता है वह है शान की गाथा सन्तुष्टी। इस परंपरा का दूसरा विशिष्ट घंटा है धर्म का अर्थ और तीसरा गोब्रह्म की आर्यासन्तुष्टी। यों तो इस परंपरा में छोटे-मोटे बहुत से प्रवास हुए हैं। बिहारी ने इन तीनों घंटों के अतिरिक्त अन्य अनेक घंटों का भी अनुशीलन किया होगा। ऐसा उनकी रचना से प्रकट होता है। श्रुति अनुशीलन का तात्पर्य स्फाटन नहीं है। जन्मति पूर्ववर्ती घंटों से बहुत कुछ

मिया है पर उन्हें अपना बनाकर लिया है उहें अपनी प्रतिभा के रूप से अपना बना दिया है।

गाथा का एक पद्य देखिए—

अम्मी दुःखकर आरक पुखी बिलसित करेसि गमव्यास ।
अम्मा बिद्य होमि सरका बैणीय ताकियो बिदरा ॥ ११०६
(अम्मी दुःखकरारक पुवरवि बिमती करोपि गमवस्य ।
अमापि न अमन्ति सरका बैयमास्तारिण्यरिचक्रपा ।)

—संस्कृत व्याख्यान

अम्मा है दुःखकर व्यवहार करनेवाले ! मायिका के केश आ तुम्हारे प्रवास में रहने पर नहीं बाँधे जा सक। अभी तक उसके हुए हैं। वे सीधे नहीं हो पाए। और तुम पुनः प्रवास की चिन्ता करने लग।

अब गमन है का एक दाहा देखिए—

अम्मी न आये सहज रंग बिरह बूबरे गात ।
अब की कहा अछाहूँ अछम अछम की बात ॥

इन पद्यों पर पं० पद्मसिंह शर्मा की टिप्पणी है—

‘आपा का भाव है कि बाह तुम भी कोई अमीन हो फिर तुम्हें जाने की आमी यह बना मजबूर करने लग हो। अभी तो अभी बाँधने में—(प्रवास बिच्छ में पतिव्रता के बर्मानुशील के कारण)—मुनमन्त पड़े केश भी मुनमन्त कर भीये नहीं हो पाये।

निसर्गदेह माया करने बँव में बहुत ही उरझा है। कायाकार ने किसी को कुछ करने की मुन्नाहम नहीं छोड़ी। ‘अमापि न अमन्ति सरमास्तारिण्यरिचक्रपा’ का मत बहुत ही साफ और सीधी है। पर तो भी अमन्तार में आमी नहीं बनता आकाश बिज में आता है। बहुत ही सफ़र भाव है।

पर बिहारीदास भी तो एक ही कहती रहते। बहुत आँकने वाले हैं। बहुत बदन कर मजबूर को साफ़ से ही तो उठे।

‘अम्मी न आये सहज रंग बिरहबूबरे गात’

बाह उरझा रहा कहते हैं। बरा अछाहूँ गयी है, काया ही पपट दी। कोई पहचान मजबूर है। बरी (पावा में) केवल मुनमन्त पड़े केश ही ने नहीं बिरह बूबरे गात है।

‘क्यों मैं धरमता जाने की अपेक्षा ‘दूबरे गात में सहज रंग का बापछ’ माना कही अधिक बाध्तीय और महत्त्वपूर्ण काय समझ आ सकता है। फिर “मन ही कहा बनाइयत मनन। मनन की बात” में कितना मार्बुर है। प्रेमानुप्राय नितना यच्छा है।

इसी दोहे के संबंध में ‘बिहारी और उनका साहित्य’ में कहा गया है कि गाथा के रूपान्तर के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं है।

अपनी प्रसंसारक प्रामोदना के बाबमुख भी मानना होगा कि जाने या अनजाने धर्म की ओर ऐतिहासिक चरना की अधिक परछाई है। अपनी टिप्पणी के अंत में बिहारी की विशेषता को पकड़ते-पकड़ते वे रह गए हैं। पर इसे गाथा का रूपान्तर मात्र मान लेने में भीषित नहीं है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता सगेगा कि भाषाकार ने परंपरा की रुढ़ि को ही प्रथम दिया है। प्रिब के विभाग में केशों का प्रसाधन न करना उचित होने पर भी रुढ़ि ही है। किंतु बात जिस ढंग से कही गई है वह अमलकारिक प्रवृत्ति है। लेकिन बिहारी के उपर्युक्त दोहे में रुढ़ि का सहारा नहीं लिया गया है। अतः उसने जो ठावकी और प्रभावोत्पादकता है वह गाथा में नहीं है। केशों का प्रसाधन मानसिक व्यापार से संबन्ध होने पर भी एक बाह्य व्यापार है। पर धरीर के दुर्बल और उचित विषय होने का सीधा संबंध मानसिक व्यापारों से है जो मन पर सीधे चोट पहुँचाते हैं। भाषाकार की अपेक्षा बिहारी यहाँ तक उपर्युक्त दोहे का संबंध है पाठकों से अधिक व्यापक मानसिक संबन्धन की शीघ्र करते हैं। इसलिए बिहारी की व्यक्तता अधिक गंभीर और उच्च-प्रतिमान बन गई है।

गाथा का एक मुद्रति-वीकृता का चित्र देविए—

सहइ सहइ छि तह तेव रामिछा सुरतबुनिभवेव ।

पम्माचसिरीबाह बहइ से जाछाई ॥ १-१५

[सहइ सहइ इति जया तेव रामिछा सुरतबुनिभवेव ।

प्रम्माचसिरीबाहीक यदास्या जातान्बहामि ॥]

—संस्कृत-रूपान्तर

बिहारी का बोधा यो है—

जो ब्रह्मनिषिपत निर्दई, बई तसुम से गात ।

कर पर देखो बरहरा, यहीं न कर को जात ॥

धर्मा जी तो इतना ही कह कर रह गए कि 'इस प्रकार बिहारीलाल जी इस मैदान में गाबाकार और कदाबाल से बहुत आनंद बढ़ गए, क्या धम्म संस्कार किया है मज्झिम कीन भिया है। उन्होंने संस्कार की बात स्वीकार की है पर संस्कार के स्वरूप की चर्चा नहीं की है।

किंतु 'बिहारी और उनका साहित्य' में उक्त पद्यों पर ही यह निष्पत्ती है—

इस भाव को बिहारी ने क्यों का क्यों धपनाया है। 'सुरतबिरह' और निरंकी छन्द एक से बचन के हैं। बोह में सामान्य क्रुमुम द्वारा नायिका के प्रसों का शोकभास प्रकट किया है किंतु गाबाकार ने छिरीप पुण का प्रयोग किया है जो कदाचित् पुण्या में कोमलतम होता है। (महाकवि कामिदास ने छिरीप क्रुमुम को ही कोमलता का प्रतीक धार्य माना है) बोहाकार ने 'दलमभियत' कह कर प्रंगा के अर्पित शोक का धमिका द्वारा उल्लेख किया है। गाबाकार ने उपमान छिरीप के साथ स्मान बिधेयन जाह कर उसकी व्यंगता की है। बोह में 'उर का बरहुरा' सुरतबिरह कायासाविक्य का सूचक है तो गाबा में सहने नहने बीज्या सुरत की बीजता की छोटक है।

डा० हरबंदास धर्मा से मैं अपनी समझमति प्रकट करते हुए कहना चाहूँगा कि किसी भी भाव को हमारे सेवकवि द्वारा क्यों का क्या धपनाया धर्ममय है। फिर उपर्युक्त निष्पत्ती में स्पष्टतः गाबाकार का कई प्रसों में बिहारी से अष्ट टहराया गया है। ऐसी स्थिति में भला बिहारी भाषा का भाव क्यों का क्यों कैसे धपना सकते हैं ? उसमें यह भी प्रकट होता है कि छिरीप क्रुमुम को जो सुकुमारता का प्रतीक माना गया है नायिका के लीन्य के लिए धर्ममूल के रूप में भी धार्य गया है। स्मान बिधेयन से उसका काव्य भीन्त्य और भी बढ़ गया है। मारम में यह भी कहा गया है कि निरंकी और सुरत बिरह एक से बचन के हैं।

निरंकी और 'सुरतबिरह' एक (एक से हो सही) कैसे माने जा सकते हैं। बिधेय में जो बसुरता बीड़ावरता और नायिका के भाव संनिहित हैं वे निरंकी में तो धार्य से रह। निरंकी की व्यंगता दुहरी है। एक ओर तो हमसे नायिका के प्रति गहरी रागभुषति प्रकट की गई है दूसरी ओर नायक को उसरी बठोरता के कारण उपार्णम-ना दिया गया है। छिरीप क्रुमुम का सुग्गता जाना और बाग है तथा किसी भी पुण को हाया में दलमल कर

मलिन बना देना और बाल । केवल शास्त्र विहित प्रतीक रूप देने से कोई वाक्य खोप नहीं माना जा सकता । बिहारी ने यथार्थ को अधिक मिष्ट से पकड़ा है । वाक्य की प्रथम पंक्ति उतनी व्यंग्य नहीं है जितनी बिहारी की दूसरी पंक्ति ।

धमक शतक का एक अनि प्रसिद्ध स्मृति देखिए—

शून्यं वायुगुहं विद्योक्तं शयनाश्रयाय विविच्यते—
 विद्याध्यायमुपागतस्य सुखिरं निर्वर्णं पशुमुपाय ।
 विस्मयं परिशुभ्य जातं पुत्रकामाश्रितं गवहस्वर्णी,
 सञ्जानयमुक्ती विवेक इत्यता वाक्का विरं सुमिता ॥ ८२ ॥

शुद्ध इसी तरह का मिमता भुमगा भाव बिहारी ने अपने निम्नलिखित श्लोके में प्रकट किया है—

मैं मिसहा सोबी समुधि, हुँह नुम्ही विंग जाव ।
 ईस्वी, विस्वानी, गछ गइयी रही गरें कपटव ॥

यं पद्यविह धर्मा ने अपने तरीके से बिहारी की प्रशंसा की है । किन्तु कौन सम्झा है कौन कम सम्झा—यह नहीं कहा जा सकता । अविम्वक्त भावों में बहुत समानता होने पर भी दोनों की प्रसंग-मेलन विशेषताएँ हैं । यं विरचनाप्रसार मिय से काफी दूर तक सहमत हुआ जा सकता है कि 'रसविह नहि बिहारी में प्रथम स्वच्छन्द नहि यत्नधानर धारि मैं विष्टलेवन का कवित कवन नहीं है । येष्ट कविपों में कवि-वर्णन हो ही नहीं सकता क्योंकि वे पुरानी उक्तिपों का नवीन बना देने में सबका समर होये हैं ।

धमक शतक और बिहारी शतक के एव-एक पद्य और नीजिए—

काता कि न मिश्रित सुन्दरि पुर्विपत्ता जया भङ्गते ।
 को काशी नितरं कुमासि कथयत्येव सबापे मयि ॥
 कश्चमन्धर तारसेव निपतत्तीतादुषां चकुपा ।
 दहवा मां इसितेन भाविमरकोत्साहस्तवा सुखिता ॥

X X X X

बिहारी हमकोई चकल छिब कवि रावन बराह ।
 छिब गहवरि भावें यरें राकी यरें बगाह ॥

धमक का नामक अपने सखा से कहता है—मैंने वाक्का के समय मिय कहा कि तू बिहारी मत कर, क्या जाने वाक्के पुन मिमते नहीं ? तू तो मैं ।

बुझती है—बहन बहन मेरी आँखें भर गईं। भगवान्मुक्त संघर ठाराबानी आँखों के पननाभुक्त आमुषों को राक कर समन अपने समंयन मूचक मरण की मूचना की। मैंने अपना गमन रोक दिया। पर बिहारी में अपने दोहे की लक्ष्मीमा से उसी भाव को नए ढंग से कहा है। निम्न ही अनुभावों में हमारे बिहारी ने भावा को काफ़ी गभीर बना दिया है।

आर्मा सज्जनी के भावा की छाया भी बिहारी के बोहों में मिलनी पर उसमें बिहारी की मौनिकता झुंझि गही हुई है—

आर्म आर्म स्विहया स्नेहे तब पयमि तब तनैव ।
आवर्तपतिवनीआधितमनया विनयमपनीय ॥

—गोवर्धन

झिरी झिरी बित बत ही रहत, दूरी काज की काज ।
धंग धंग लुपि धीर में बसी और की भाव ॥

—बिहारी

मिठ हयचर्य का एक 'दूहा' देखिए—

भमरा प्युधि बिगबह के बि दिवहवा बिगबु ।
बयपचतु पापाबहुत कुल्लु आब कबबु ॥

हे भौरे । मदन पन और टप्या बहुत करेब अब तक नहीं फूल जाता तब तक यही टहर ।

इसमें मिनता कुपता बिहारी का दाहा है—

हरी आस घटवपी रहत अकि शुकाव के मुख ।
है हे केरि बसंत कतु इन कारनि से नृच ॥

इसकी समय समय मीरोपनाओं को देखन हुए 'का बड़ छो' कहन बड़ खोनु की बजना जागरित होनी है। मिठ हयचर्य में वर्णन का नाम नहीं मिला है इसमें उसकी व्यंग्यता अधिक बड़ मई है पर इसमें बिहारी की अपनी मौनिकता में बनी नहीं आई है।

यहाँ पर कुछ मुमतामक पयों को उल्लिख करने का मरा अनिश्चय कबल इतना ही था कि बिहारी ने अपने बुरबुरी कविनी के भावों को अपने

हंग से समझाया जरूर है। ऐसा करना किसी तरह का अपराध नहीं माना जा सकता प्रायः सभी कवियों ने ऐसा किया है पर यद्यपि यह है कि ऐसा करने में पुनर्जातन न हो पितृपेयण न हो।

यह ऐतिहासिक चेतना का विविष्ट और अपरिहाय घंटा है। हम चित्त चित्त में ही० एष ईमियन के नाम से यदि किसी को बिड़ हो तो वह चौक से आनन्दबर्नाचार्य को याद कर सकता है—

त एव पदविन्यासा ता एवार्थ विभूतयः।
तथापि नम्यं भवति कार्म्यं द्रव्यं कौतुकात् ॥

बिहारी के प्रेम का स्वरूप

मानवीय जीवन को सरल और सुखद जीवन बनाने के लिए प्रेम की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। प्रेम के अनेकानेक रूपों में बिहारी का प्रेम सर्वाधिक पूरक तथा तादात्म्यपूर्ण होता है। इस प्रेम के स्वरों के संक्षेप में विचार करने पर स्पष्ट रूप से हमारे तीन स्तर माने जा सकते हैं—भौतिक, आध्यात्मिक और आध्यात्मिक। किन्तु इन स्तरों की धन्य-अनन्य बढपरी में बाँट देना मनोवैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। अतः आध्यात्मिक रूप में भी प्रेम मात्र भौतिक नहीं हो सकता। शारीरिक विषय के पूर्व भी जिस प्रकार के उत्साह, पुनः आनन्द या पीड़ा का अनुभव प्रेमी को होता है, इस प्रकार का अनुभव किसी अन्य भौतिक उपस्थिति द्वारा नहीं हो पाता। प्रेमिका के आध्यात्मिक सौन्दर्य—संवेद्यात्मक तथा बोद्धिक सौन्दर्य—का कम मूल्य नहीं होता या मरना। फिर भी प्रेमी-प्राप्त में भौतिक आकर्षण—शारीरिक आकर्षण के महत्व को कुप्राप्ता नहीं या मरना। सौन्दर्य के बन्धु परक पक्ष का कम महत्त्वपूर्णता का बहुत ही त्रिभ विषय रहा है। यही पर पुराना महान उठ खड़ा होता है कि क्यों सौन्दर्य बन्धु निष्ठ है? इनके उत्तर में यही कहा जायगा कि यह आध्यात्मिक रूप में सही है। आध्यात्मिक आत्म के आकाशों में तारी के अथर्व धम का जो निरूपण कर रहा है, उसके लिए जो अस्तित्व चुन रहा है वह सौन्दर्य की अस्तित्वपूर्णता का सौन्दर्य है। पर इस बन्धु निष्ठ प्रीति को एक

विशेष संदर्भ में सौंदर्य तब माना जायगा जब वह प्रेमी के धारण का हेतु हो सके। इसीलिए सौंदर्य आन्त्रियों न विषम और विविध के पारस्परिक संबंधों में सौंदर्य की संनिहित मानी है।

प्रेम का आत्मिक स्तर यह है जहाँ पहुँच कर भौतिक आकर्षण की अपेक्षा आत्मिक सौंदर्य के प्रति मन की समस्त अधिक विचार पड़। इससे उत्पन्न संस्मास से एक व्यापक सौंदर्य केतना भाविभूत होती है जोवन का अनुकूल बहनीय नवीन स्पर्शन गुनाई पड़ता है। इसके द्वारा जो संबंधना मधका संबंध आगारित होता है वह स्मृति-विशेष के प्रति केन्द्रित होने हुए भी उसका प्रतिबलन कर जाता है। रोमांटिक प्रेम का यही स्तर है। आध्यात्मिक प्रेम में प्रेमी आत्म-केन्द्र बह नहीं रह जाता उसका केन्द्र ऐसा व्यापक हो जाता है कि वह केन्द्र केन्द्र न रह कर बृत्त में बदल जाता है।

बहना न होगा कि रीति-कविओं का प्रेम पद्म प्रकार का है अर्थात् वह भौतिक बरातम से ऊपर नहीं उठ पाता। उनके प्रेम का मुख्य प्रेरक सोच शरीरी सौंदर्य है और उसकी चरम परिणति भी वही है। बिहारी का कहना है—

तो तन अचवि अपूप कतु जगदी सब जयत की ।

मो दग जागे रूप दगलु जदी अति चरपदी ॥

यहाँ पर नायक के दृढ़ तापिका के रूप से लग गए हैं अर्थात् उस पर अनुरक्त हो गए हैं। बिहारी ही कही रूप की समशीलता के प्रति आकृष्ट होता अहंरस का सफ़र चर्म है। किन्तु प्रेम के संबंध में बिहारी तथा अन्य रीति कविओं की साम्यताएँ संबंधों भौतिक स्तर पर ही रह गई हैं। भौतिक स्तर का मतलब यह नहीं है कि वहाँ पर किसी पारलौकिक या अलौकिक स्तर की भाँव की जा रही है। इसका इतना ही अर्थ है कि उनके प्रेम वर्धन में हृदय की व्यापक बनानेवासी प्रकाश की किरण नहीं है—

सरस सुमिख चित हारण की करि करि अमिष उदाम ।

गोह बिबाई जीतिये कैकि प्रेम भीगाम ॥

यहाँ पर प्रेम भीमान का नेत्र है—सबमुख में बिहारी का मत इस नेत्र में खूब रमा है। इसमें धनेक प्रकार के बाँव पेंच लुका छिपी की चकल पड़ती है। इस भीगाम की जीतने के लिए अमिष अभ्यास की आवश्यकता होती है जिसमें रीति काव्य के मायकों को काफी कमाल शामिल है। रीति

नाम्नों के नायक अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबंधों के कारण धुन कर प्रेम नहीं कर सकते थे। उनका प्रेम में बहु आशेन मड़ी था जो इन प्रतिबंधों को अपनी प्रवृत्ति द्वारा न बहा ल जाता। जैसे म तो मोक्ष समझकर पूरे पुरुषको कदम रखता होता जिसमें अन्ध लोगो से छिपकर अपने कार्य में सकलता प्राप्त की जा सके। जीवान्धत्व को गीनि बधिया व प्रेम का प्रतीक माना जा माना है। इसके ठीक विपरीत स्पष्टतः नाम्नाकार के बधिया ने दक की बात कही—

अति सुखो समह को मारग है जहाँ बहुत सयावर बाँध नहीं ।

तहाँ साथे चले तजि आपनपी निम्कई कपटी से निर्माँह नहीं॥

—बन आनंद ।

छोड़ की छात्र की मोक्ष प्रज्ञाक को बारिसे प्रीति क ऊपर होऊ ।

गर्ब को रोह को देह को बातो सनेह में होंतो कर पुनि सोऊ ॥

बोधा सुबोधि विवाह करै कर ऊपर जाऊ नहीं सिर होऊ ।

छोड़ की प्रीति बेरात को प्रीति ही प्रीति के पदे पर जहि छोड़ ॥

—बोधा ।

उन्होंने प्रेम का बहु नई मर्यादा की जो मोक्ष साधन निबद्ध मान्यताओं को धनितमिन्न कर जाती है। उन्हें नौकिय बधनों की कोई बिना नहीं है। प्रतिभागामी ध्यति जैसा पहल कहा जा चुका है यथार्थ का नई दृष्टि में देखना है वह अपने मन मुक्त्य की प्रतिष्ठा करता है जो परंपरा के मेल में नहीं होने। वह निर्माँह होकर प्रेम पदानुपायी होता है वह शुभराज बनवाने अवांछनीय नरका को—अथ व समन्ध भाव की निरा धारि को—अपश्य मानता है। उनके प्रेम के मुख में भी अवांछनीय है पर वह उनका निरा मन नहीं है। प्रेम उनका जीवन मरण का मर्यादा बन गया है।

प्रेम की मर्यादा धीरे दूरदर्श के संवत्स में विहारी जैसे विचरता बनि अपरिचित नहीं थे। प्रेम बनि न सास्त्रीय परंपराओं का इतना मनोजोग पूर्वक अध्ययन किया हो वह प्रेम का महत्त्व में अनभिज्ञ हो गया नहीं माना जा सकता। उन्होंने लिखा है—

गिरि तें ऊँचे समिऊ भन चुते जहाँ हकार ।

बह मरु पशु नरक की प्रेम पबोधि बगार ॥

इस दोहे में रसिकों की अँधारी और प्रेम पयोधि की निमग्नता के साथ साथ उसे छिछरी ठसठा समझनेवाले गर पशुओं का भी चरमल किया गया है। 'पशुमरन' वाक्य कवि की भ्रममाहट का चोटक है, प्रेम की वास्तविक गहृता को न समझ कर उस पर टीका टिप्पणी करनेवालों पर यहूय व्यंग्य है। इनका प्रेम समुद्र की गति घटल निर्बाधित और घनत है फिर भी उसी की गति अपनी सीमाओं में रहनेवाला। यही नहीं उन्होंने उपचार निरपेक्ष प्रेम की भी बर्णन की है—

बैकु न सुरसी बिरह मर बेह अता कुम्हिकाति ।
मिठ मिठ होति हरी हरी, करी धाकरति बाति ॥

इसे कातिबाध के उस स्लोक की प्रतिध्वनि समझनी चाहिए जिसमें बिरह प्रेम के रासीभूत होने का उत्प्रेक्ष्य हुआ है—

'स्नेहाबाहुः किमपि बिरहे व्यंसिबस्ते त्वभोगात् ।
इहे बन्धुमुपचितरसा मेमरायी भवन्ति ॥

यही नहीं सजजन के स्नेह का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—
अरु न बौंदत बरत है सजजन नेहूँ गंभीर ।
धीको पौ न बर बरै, रसौ ओकराय नीर ॥

सजजन का स्नेह जोमराग में रने और की गति का जाने पर भी कत्ता नहीं। पर इन स्तुत चरित्रों को परंपरा का ही आग्रह समझना चाहिए, बिहारी की अपनी मास्वताओं का नहीं। वे मात्र कवि के व्यक्तित्व के और मात्र संस्कृति को उन्होंने खुली प्रतिध्वनि ही है। इस धर्म में वे धर्म रीति कवियों ने कुछ भिन्न थे। जहाँ धर्म कवियों को पहले के संस्कारों का भय था वहीं बिहारी इनमें बहुत कुछ मुक्त थे। यथारस रीति कवियों ने एक धीरे धमा प्रचुर अँधे अँधे आँखों की दुझाई दी है वहीं दूसरी ओर खुले शृंगार का वर्णन भी किया है। बिहारी में इस तरह का कास अंतरविरोध नहीं दिखाई देगा। इसलिए उनकी सगई में लक्षणीय सामंतीय प्रेम का जितनी ईमानदारी से चित्रण हुआ है उतनी ईमानदारी से अन्य समसामयिक कवियों में नहीं हुआ है। जिन कीका परक प्रेम का चित्र उन्होंने उल्टा है वह पूर्णतः सामंतीय है।

यहल कहा जा चुका है कि रीति कवियों के प्रेम का मुख्य माध्यम केंद्र धरीरी सौंदर्य का। बिहारा ने इसका वर्णन बार क्कों में किया है—
प्रमावात्मक रूप में वस्त्रासूपणों के बीच में घरेलू बातावरण में और परंपरा के भेद में।

वहाँ कवि श्रद्धा में सर्वथा मुक्त होकर मौखिक प्रमाणात्मिकता का वर्णन करता है वहाँ पात्रों की ऐशिय जनता की सर्वाधिक बहुमुखी करत में गह्वर होता है। स्वयं मौखिक किसी घंटा विशेष में नहीं प्रमाणात्मिक होता और न ही घंटा के सुपम संस्कार में ही उमरी मस्तिष्क शीतार की जा सकती है। सब विषय पुष्पा का वह ऐसा प्रभाव होता है जो हमारी समात्मिका हृत्ति का उमाहरे में पूर्णतः समर्थ होता है। प्रभाव मूलक शोध का एक उत्कृष्ट चित्र देखिए—

धन धन धन की कपट उपरति जाति अद्वैत ।

करी पाठपीठ तक की मरी सी देह ॥

मुद्राग्रहण की छाया के नाश्वर की मौखिक धंता में प्रमाणात्मिक होवना लाभ्य मौखिक है। नाश्वर के धन धन में धन की समस्त निरन्तर उमरी जाती है। यद्यपि कवि का मुख्य बध्य यही है कि भी इनमें से उनके लाभ्य की उचित रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इसके लिए उनकी धन द्वारा उठनी हुई तरंगता का जो परिणाम निमित्त किया गया है उनके द्वारा उनकी समुदाय मरी मरी की समुदाय है। वही नाश्वर के मौखिक का ऐशिय और प्रमाणात्मिक बना करता है। इस दोह की सत्यता चित्र पर निर्भर है। सभी यह धन समुदाय का ही रह गया। इसका उलट पाठ के लिए एक दूसरा बाण भी देवता पढ़ता—

धन धन नग जगमगत दीप मित्रा सी देह ।

दिवा बगैँ हैं रई बहो जगरो देह ॥

नाश्वर के धन धन के (मानवों के) नग उमरी दीप मित्रा सी देह में जगमगाते रहते हैं। इसलिए दीपक बुझा देने पर भी वह में बड़ा उमाता (प्रभाव) रहता है।

इस दोह में भी वह की धन का ही वर्णन किया गया है। दोनों दोनों में धन की समुदाय या दीर्घात्मता की निर्णय की के प्रभावों की शक्ति की गई है। वह वही वहन का प्रभाव जीवन और जगत की समुदाय धनियों में बाँध दिया गया है वही दूसरे का प्रभाव एक मित्रा और नाश्वर गत्य में बाँधा गया है। पहले दोह में धन की नाश्वर और समस्त उमाता प्रभाव के धनमयता की इस रूप से प्रस्तुत किया गया है कि नाश्वर व पाठ सत्य का के सहज ही सु

बने हैं। दूसरे बोदे में दीपधिया सी देह तथा प्रकाश का घंटेरसंबन्ध स्थापित ही नहीं हो पाया है। इन संबंधों को बहिर्बन्ध ही कहा जाएगा। यह बलकार विघामक तो है पर राज विधायक नहीं। वेद है कि विगुह प्रभावनात्मक रूप बिज बिहारी में कम है।

रीति-कर्मियों ने नायिका के सहज सौन्दर्य पर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना उसके प्रसङ्गत सौन्दर्य पर। रीतिकामीन वैभव-विभास के अनुकूल नायिकाओं का भी उमान्क चित्र लीजना उनकी ब्रह्मरूपियों के बीच रवि के ध्वज अनुकूल ना। ब्रह्मरूप नायिका के धानिनाम के सुचक धासीनता के रसक सौन्दर्य के समिबर्द्धक और नायक के प्रेम के उद्दीपक हैं। वे अपनी रंजीत छाया से नायिका में मनीष धातृत्व और मादकता भर देते हैं। इन तरह के सौन्दर्य बिज बिहारी में डेर के डेर मिल जायेंगे। एक एक करके कुछ उदाहरण देखिए—

(१) सहज सेत पैचतोसिया पहिरत अति ब्रुवि होति ।

जब बादर के दीप छीं जगमगाति सब-भ्योति ॥

पैचतोसिया एक प्रकार का मत्स्य नारीक महीन वस्त्र है। उसकी पूरी छाड़ी छील में कबल पाँच ठोले की होती है। इस वस्त्र के पहनने से नायिका की छाया विशेष बढ जाती है। स्वभावसमीप्यानि भक्तिनामि घट्टरसमीप्य-मबन्धि। स्वभाव से ही रमणीय नारी ब्रह्मरूपियों से अधिक होने पर और भी रमणीय हो जाती है। 'जिनकी के किसी उद्यान में किसी-किसी ऊँचे स्थान से जल का मीना तथा विस्तृत प्रवाह गिराया जाता है यह जलचावर कहलाता है। किसी-किसी जलचावर के पीछे से जगमगाती हुई दीपावली बकी घोमा देनी है। इसी दीपावली को बिहारी में 'जलचावर के दीप' कहा है। पैचतोसिया से आबूत नायिका क छरीर की पीताम कति जलचावर के पीछे रके हुए दीपकों की भाँति जगमगर करती हुई खोजित हो रही है।

यहाँ पर भी वही गुराता प्रश्न उठता है कि यदि सौन्दर्य का यह बिज अप्ठ है तो क्यों? इस क्यों का उत्तर ही मूल्यांकन है। छत्रों का धन्य मात्र न तो धातुजना है और न मूल्यांकन। बस पैचतोसिया वस्त्र से जलना हुआ नायिका का पीताम सौन्दर्य उसी प्रकार से सोमन प्रतीत होता है जिस प्रकार से जलचावर के पीछे से जगमगाती हुई दीप दिखाएँ। इस बिज की

खेप्टना इन बात पर निर्भर है कि कवि की वास्तविकता में कहीं तक संबंध स्थापन कर सका है और स्वयं वह वास्तविकता किस प्रकार की है। नायिका की कवि मानसिक वास्तविकता (Psychic reality) है और जनसाधार का दोष भौतिक वास्तविकता (Physical reality)। निम्न ही इनके संबंध स्थापन में कवि की गलत गढ़ा जा सकता है। अप्रमत्त में नायिका के पारस्परिक मौल्य को जिस ढंग में प्रत्यक्षीकृत किया है वह ग्राहनीय है।

प्रमावात्मक बिज की धरोहर यह अधिक रंगीन और रसक है किन्तु यह उतना सबदनात्मक नहीं कहा जा सकता। उतना सबदनात्मक का अर्थ यह नहीं है कि यह संवेदनात्मक नहीं है। यह केवल संवेदना के बर्णन का साधन है।

(२) क्षिप्ती क्षीणी मुँह छठी नीली बंधर-बीर ।

मनी कक्षाविधि ध्वजमंडी बाहिरी के बीर ॥

इन मौल्य बिज में जो संबंध स्थापन किया गया है वह भी कृत्रिम ही है पर इनमें साम्यबोध संवेदना का रूप में हुआ है। इसलिए इसकी संवेदनात्मक गहराई भी ग्राह्य है। उभयों का रूप में जो अप्रमत्त में छाया पड़ा है वह पहल उदाहरण में ल गाए गए अप्रमत्त की धरोहर अधिक व्यापक और ग्राहनीय है। पर पहल उदाहरण की तरह यह न होना चाहता है और न प्रमावात्मक। बात यह है कि इसका अप्रमत्त लाक्षणिक है जो सामान्य उदाहरण के अर्थ में कृत्रिम होता है। अथवा अथवास्वातंत्र्य प्रयुक्त होने का कारण यह अपेक्षाहीन भीहीन लगता है।

(३) अमचमात बंधन बधन, बिज बंधन पर मीन ।

मावदु मुर मरिता बिमल अल उदरत जुग मीन ॥

इसका अप्रमत्त भी संभावनापूर्ण है। लेकिन संभावनापूर्ण अप्रमत्त में भी बर्णन का अंतर स्वीकार करना होगा। पहले और दूसरे उदाहरणों की धरोहर इसका अप्रमत्त प्रत्युत वा लक्ष्य बिज उदाहरण करने में अक्षम है। उदाहरण हूँ 'पुण्यवीन अमचमात हुई बंधन धीनों का कृत्य गढ़ा करने में निरल प्रतीत होते हैं।

इन तरह के कवि-विशेषों में विहारी की प्रतिभा नहीं रम जाती है वहाँ के बिज निरल ही संवेदना बन गई है।

यद्यपि बिहारी ने कोई मूलन दृष्ट नहीं लिखा फिर भी उनकी दृष्टि के लक्षण प्रकट नहीं थे। उनका रीति परंपरा और धार्मिक रुढ़ियों का बहुत प्रभाव था। नायिका का मूल-सिद्ध रूप परंपरा ब्रजम संस्कृत कवियों का भी प्रिय विषय था। रीतिकाल में तो भय-विचार ब्रजन की अवस्थिति बहुतता दिखाई पड़ती है। बिहारी ने मूल-मिल का वर्णन कमबख्त रूप में नहीं किया है पर अधिकारों लपटायायक व्यवस्था का जो चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है वह परंपरामुलक ही है। कुछ उदाहरण देखिए—

केस—

- १—सहज सचिञ्जल स्वामयसि सुखि सुगंध सुकुमार ।
गगन न मन पथ अपय कसि बिजुरे सुपरे बार ॥

भीहू—

- २—चितवसि भीहू कमान गढ़ रचरा बहनी अञ्जक ।
तकसि सुरंगम ताव धातु बँकाई ही बड़ी ॥

नयन—

- ३—बर जीठे सर मीन के देते देते मैं न ।
हरिनी के वैराग्य छे हरि कीके ये नैन ॥

मुख—

- ४—सुर उदित हू मुखित मन मुख-मुखमा की ओर ।
चिति रहत चहुँ ओर तें निरकल कलनि अओर ॥
५—बनो ही तिमि पाह्ये वा बर के चहुँपास ।
मित प्रति पूज्योई रहत आनन ओप उजास ॥

हास्य—

- ६—धेकु हँसाही न नि लखि ककरी परत मुख भीडे ।
बाक्य कमकनि बीच में परत भीचि सी सीडी ॥

करि—

- ७—जुँ-जुँ जोवन केद दिव मुख मिति अति अचिआति ।
लीं लीं दिव करि जूपा जीव परति सी जाति ॥

अथ-संज्ञा

८—अथ सुगन्ध कायम भित्तये मन्त्रा विधि दीन ।

केहि तयन दुख ईष ७ केहि तयन भुनर्हम ॥

पौ०—

१—पाप महाभर तेन कैं नाइन पीरी आय ।

झिरि झिरि ज्ञानि महाबरी जैश्री मीरठ जाय ॥

पुनर्वचन—

१०—एग एग अगमन पति जवन अल्ल दृष्टि मुक्ति ।

ह्रीं ह्रीं अम्बिपत रुद्र इषद्विषा से पूजि ॥

उपमूर्त उदाहरण य (धर्मि की छोड़कर) जिन पक्षपात का सीन्धव
बचन हुआ है वे हमारे बीर्य-आप का निश्चिन् मात्र भी उत्कृष्ट नहीं कर पाय ।
इस बाह्य बाल्यविजिताओं में जो मरुप-म्यापन हुआ है वह कश्मि है । सुर्वोत्प
होने पर ही बचन का मुक्त-मुक्तता की धार दमना बमन्तारमूलक है । बचन
मूलक नहीं । यह बमन्तार भी धर्मि का ही बचन आया । 'पक्ष ही
निश्चि पात्रन क प्रत्यक्षबचन को बाल्यविजिता में छोड़ नी बुर है इसनिध उमका
सीन्धव उद्ग मायनी की बिदलना वा भी धर्मिबचन कर जाता है । उमी
प्रकार धर्मन को उमका का दिन धीन कटि को गति बहना विजिता धर्मन
है । यह पक्षपात बचन में विजिता दूर है । बाध्य में प्रमुक्त धर्मन हुआ
धर्मन बचन में विजिता दूर है । बाध्य में प्रमुक्त धर्मन हुआ
ही कश्मि हाया बाध्य पात्रन को उमका की धर्मि में न धार में उमका ही
धर्मन हुआ । 'हर्मि के धर्मन' धर्मन धारि ना रिने-विजिता
धर्मन है ही ।

सीने-आँखों में संघर्ष शृंगार के प्रति बिगड़ी लज्जा दिखाई पड़ती है।
उसकी बिगड़ी-शृंगार के प्रति नहीं। संघर्ष शृंगार का मूलाधार पारिवारिक
संघर्ष है 'जो प्रेम प्रकार कल्पों में मायाओं
संघर्ष केन्द्रों काविक धीरे पारिवारिक दिखाता मान
मिक बगलों कादि में प्रभुता होता है'। इस प्रेम
में लज्जा पर्वत में कुर्वित गठ-कुर्वित बिगड़ मरदान कीरा घट्याम
घादि का वर्तन बगल घाट है। दमन धर्मन मया संघर्ष घादि का मराने

संयोग का महत्त्व पड़ा किया जाता है। इसलिये हमका समावेश भी इस काल की कविताओं में सूख हुआ है। संयोग में कहा जा सकता है कि इन कवियों का—विशेष रूप से बिहारी का मन—कीड़ा-गरक प्रम में बहुत प्रबन्धी तरह रमा है। इसके कमलप्रलय इनकी सतसई में सुरति-चिन्तों का भूरिछ सम्मेलन हुआ है। जिस हाव-योजना या संतिया-नर्जन के लिए बिहारी की प्रत्यक्ष प्रशंसा की जाती है उसके मूल में भी यही प्रवृत्ति समझनी चाहिए।

भंगिमाएँ दो प्रकार की मानी जा सकती हैं—स्वामाधिक और स्रष्ट । स्वामाधिक भंगिमा यह होती है जिसमें अपने व्यापार के मूल में व्यक्ति का

संगिमाएँ संगिमा सीढ़ीस्य होती है। एक विशेष प्रकार की संगिमा को संमौलेच्छा सूचक होती है। काव्य-शास्त्र

में 'हार' कही जाती है। बिहारी सतनई में दोनों प्रकार की भविष्यवाणी के चित्र मिलते हैं। पर शुंगार-काव्य में निरपेक्ष भविष्यवाणी का कोई अङ्ग नहीं है। इसलिए स्वाभाविक भविष्यवाणी का भी प्रष्टा की प्रतिश्रुतियों से बाँध दिया गया है। दूसरे शब्दों में इन भविष्यवाणी को नाटक की दृष्टि से प्रयोजित किया गया है। पहले हम इसी का विवरण करना चाहेंगे। एक उदाहरण देखिए—

अस्मीं तस्मिन् पश्यति बद्धु, मुकति विहसि सतराह ।
तस्मीं प्राप्य तस्मीं-मुदी मन्मथवत् स्त्री जाह ॥

वह भाव का प्रकट है। मायक मायिका पर कुसाम खेकने के लिए प्रस्तुत है। धीरों में कुसाम पक जाने के जय व वह धूपट में जुड़े बाँधी है कुछ मुक जाती है फिर हँस बैठी है बाँधिर में ज्यमा भी जाती है। मायक को पसकी केप्टाएँ इतनी मुक्त प्रतीत होती है कि वह फिर-फिर उन्हें देखने की भावनाया से भूटे ही मुट्टी लाने रहता है। वहाँ केप्टा का मुख किना काय्य हो पड़ा है। इस खेल का एक दूसरा रूप देखिए—

जाँच जाई सोची करी जिठें दुखीची देव ।
 फिरि फिरि भक्ति जाई परै प्यो बँकरीची पैव ॥

हमके मकसद का पालन करते हुए रत्नाकरजी ने लिखा है—'मामक नायिका दोनों कहीं जा रहे हैं। मार्ग का एक भाग तो लोगों के बगले बगले

बिहारी का गया है और दूसरा भाग कहलाया है। नायक प्रेम के माते नायिका को ना पकड़ी दृग्दृग् पर दिखाए जाता है। और स्वयं उसका भाव साय बलक के कारण कहलीन भाग पर बनता है। जिसमें उसका पीछा न कहलीन भूमि है। उसकी चला न यह बात जान करके नायिका प्रेमाभिरुचि के कारण उसकी पीछा न पीड़ित हाकर सीधी बगनी और नायक को उस मार्ग में बनन न करवनी है। नायक उसका बगना मानकर कुछ दूर ठा इस प्रकार निमग्न का बनता है कि उसको कहलीन न गहों पर नायिका का वह मौन बगना का मौनी करना। उसे लगा भा गया कि वह फिर जानबूझ कर उसके बिड़ाने गया उसकी वह मोहिनी चला देखन के निमित्त ऐसा करना है और वह फिर उसी प्रकार नाक बगना सीधी करे।

यही भी 'मीची का ब्यासा' लिखत है। पर नायक को उसमें मुक्तानुमति प्राप्त होती है। कुछ उदाहरण और नीचे—

(१) बिहसति मङ्गलति सी दिये कुछ-आँख बिच बँह ।

भीजे पर छट की चली न्याप लीख बँह ॥

(२) बहत निकसि कुछ-आँख बहत नीर मुख मूच ।

मनु लुटि गो कोरनु बहत जोरत बँहै दूच ॥

(३) छोटे हँसै किनि धी, किनि लँ बँहै उठारि ।

मोहै छँ बँहै छुई, जेम्हँ रहि नारि ॥

पहन उदाहरण पर एक टिप्पणी देविए—

'मनु नारी का सर्वाधिक धार्मिक धर्म है। मनोवृत्ति भीना बन्ध उसका शरीर न बिरह जाता है। अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार वह बाह्य में मनो को रोक लेती है। नायक के दर के प्रभाव में लज्जा की भावना उठोत्त नहीं होती। एकाग्र स्थान में स्नात करनी हुई स्त्री के लिए मानव जिना बहुत धार्मिक नहीं है। यह बात जस्य मनोच दूरी के सामने ही उत्पन्न होता है। विशेष न न पुण्य के सामने। स्मरण करने की बात है कि बिहारी की नायिका मनोवर न निजम रही है। इसका पर बिहारी जैसे रसिका का जस्य नगा रहता होता। एक गालीन नायिका के लिए धार्मिक या कि वह अपनी बाहों में स्नानों का रोक लेती। विद्यापति की मधुसूता नायिका के सामने कोई पुण्य या नारी नहीं है। एक बहिन को उसका जस्य जीवने के बचन में कोई शान्तिना नस बाधा नहीं प्रतीत हुई। 'यह

संयोग का महत्त्व कहा किया जाता है। इसलिए इनका समावेश भी इस काम की कविताओं में पूरा हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इन कवियों का-विशेष रूप से बिहारी का मन-कीड़ा-परक प्रेम में बहुत मजबूती पाए रहा है। इसके फलस्वरूप इनकी सतसई में सुरति-चिन्तों का भूरिछा उत्पन्न हुआ है। जिस हाव-योगना या भंगिमा-वर्णन के लिए बिहारी की अत्यधिक प्रशंसा की जाती है उससे यूस में भी यही प्रवृत्ति समझी जायिए।

भंगिमार्ग दो प्रकार की मानी जा सकती है—स्वाभाविक और सचेष्ट। स्वाभाविक भंगिमा यह होती है जिसमें अपने व्यापार के मूल में व्यक्ति का कोई मनोबिचार अनुस्यूत नहीं रहता। सचेष्ट भंगिमार्ग भंगिमा सोद्देश्य होती है। एक विशेष प्रकार की भंगिमा जो संयोगच्छा भूषण होती है काव्य-शास्त्र में 'हाव' कही जाती है। बिहारी सतसई में दोनों प्रकार की भंगिमार्गों के चित्र मिलते हैं। पर शृंगार-काव्य में निरपेक्ष भंगिमार्गों का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए स्वाभाविक भंगिमार्गों का भी प्रशंसा की प्रतिक्रियाओं से बाध दिया गया है। दूसरे छन्दों में इन भंगिमार्गों को नायक की दृष्टि से प्रशंसा किया गया है। पहले हम इसी का विवेचन करना चाहिये। एक उदाहरण देखिए—

जगदी उककि अर्पति बहनु, मुकति बिहंसि सठराइ ।
तली गुआल सुदी सुदी अकबरवत प्यी बाइ ॥

यह भाग का प्रथम है। नायक नायिका पर मुसल फेंकने के लिए प्रस्तुत है। धाँसो में मुसल पड़ जाने के तब से वह भूँचट से मुह बाँपती है कुछ झुक जाती है फिर हँस बेठी है बाहिर में खल्ला भी जाती है। नायक को उसकी बेवफाई इसकी मुसल प्रतीत होती है कि वह फिर-फिर उन्हें देखने की धमिलाया से झूठे ही मुद्दी लाने रहता है। वहाँ बैठा का मुसल पिटना काव्य हो उठा है। इस खेल का एक दूसरा दृश्य देखिए—

मोंक बई सीसी करी जिनि कुरीसी दैक ।
फिरि फिरि मूखि बई गई प्यी कँकरीसी पैक ॥

इसके अन्तरंग का उल्लेख करते हुए रत्नाकरजी ने लिखा है—नायक नायिका दोनों कहीं जा रहे हैं। मार्ग का एक नाम तो लोपों के अगठे चलते

बिहारी हो गया है और दूसरा भाग कँकड़ीया है। नायक प्रेम के मारे नायिका को ठो बन्धनी बुरहुरी पर बिबाए जाता है और स्वयं उसके साथ साथ बसने के कारण कँकड़ीया भाग पर बसता है जिससे उसके पाँव में कँकड़ीया चुभती है। उसकी बेप्पा से बहु बात जाठ करके नायिका प्रमादिक्य के कारण उसकी पीड़ा से पीड़ित होकर सीबी करती और नायक को उस भाग से बसने से बरजनी है नायक उसका कहना मानकर कुछ दूर ठो इस प्रकार भिद्य कर बसता है कि उसको कँकड़ीया न मर्गे पर नायिका का बहु मोक बड़ा कर सीबी करना उसे ऐसा भा गया कि बहु फिर आनन्द कर उसके बिहारे तथा उसकी बहु मोहिनी बेप्पा देखन के निमित्त ऐसा करता है और बहु फिर उसी प्रकार मोक बड़ाकर सीबी करे।

यहाँ श्री 'सीबी' का व्यापार निश्चेष्ट है पर नायक को उससे मुक्तानुमति प्राप्त होती है। कुछ उदाहरण और नीकिए—

(१) बिहसति सकुचति सी बिसे कुछ धाँवर बिब बाँह ।

धीमे पद सर की बली ग्हाब सरोवर माँह ॥

(२) बहत बिहसि कुचकोर-रवि करत गौर मुख मूक ।

मगु सुदि गो कोटनु बहत चोटत बँबे कूक ॥

(३) धरे बहँसी बिनि बरे बिनि लँ बेहि उठारि ।

बीके छै बीके सुबै, ऐसीरँ रदि बारि ॥

पहले उदाहरण पर एक टिप्पणी देलिये—

'स्नान गारी' का सर्वाधिक धार्मिक धर्म है। स्नानोपरान्त श्रीमा बस्त्र अपने शरीर में बिबध जाता है। अपनी स्वामाधिक प्रवृत्ति के अनुसार बहु बाहों में स्नानों को डँक लेती है। नायक-नय हर के पयास में लज्जा की भावना प्रतीत नहीं होती। एवात्म स्वान में स्नान करनी हुई स्त्री के लिए गोपन प्रिया बहुत आवश्यक नहीं है। यह काम अन्य संकोच दूसरे व्यक्ति के सामने ही उत्पन्न होता है विशेष रूप से पुण्य के सामने। स्मरण रखने की बात है कि बिहारी की नायिका सराबर से निरुप राखी है। इसके तत् पर बिहारी जैसे रसिकों का जमपट लगा रहना होगा। धन शालीन नायिका के लिए आवश्यक था कि वह अपनी बाहों में स्नानों को डँक लेती। बिद्यापति भी मछन्नाता नायिका के सामने कोई पुण्य का मारी नहीं है। प्रत्यक्ष कि को उसके गन नौन्द्य के वर्णन में कोई धार्मिकता जग्य भाषा नहीं प्रतीत हुई। यह

संयोग का महत्त्व पड़ा किया जाता है। इसलिए इनका समावेश भी इस काम की कविताओं में दूब हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इन कविताओं का-विशेष रूप से बिहारी का मन-कीड़ा-मरक प्रेम में बहुत अच्छी तरह रखा है। इसके पदमस्वनय इनकी सतसई में सुरति-चित्रों का भूरिषा उल्लेख हुआ है। जिस हाव-बोझ या भंगिमा-वचन के लिए बिहारी की भव्य प्रशंसा की जाती है उसके मूल में भी यही प्रवृत्ति समझनी चाहिए।

भंगिमाएँ दो प्रकार की मानी जा सकती हैं—स्वामात्रिक और सचेष्ट। स्वामात्रिक भंगिमा वह होती है जिसमें अपने व्यापार के मूल में व्यक्ति का कोई मनोविकार अनुस्यूत नहीं रहता। सचेष्ट भंगिमाएँ भंगिमा सोरैस्य होती हैं। एक विशेष प्रकार की भंगिमा जो संजीवेष्वा भूषक होती है काव्य-शास्त्र

में 'हाव' कही जाती है। बिहारी सतसई में दोनों प्रकार की भंगिमाओं के विश्व मिलने। पर शृंगार-काव्य में निरपेक्ष भंगिमाओं का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिये स्वामात्रिक भंगिमाओं को भी द्रष्टा की प्रतिक्रियाओं से बाँध दिया गया है। दूसरे स्थलों में इन भंगिमाओं को नायक की दृष्टि से सब दिया गया है। पहले हम इसी का विश्लेषण करना चाहेंगे। एक उदाहरण देलिये—

जानी उच्छकि खरिदि बरपु, सुकति बिहँसि सतराह ।

तानी गुलाब मुठी-मुठी कयकयत जौ जाह ॥

यह काव्य का पद्यसर है। नायक नायिका पर गुलाब फेंकने के लिए प्रस्तुत है। हाँको में गुलाब पड़ जाने के मय से वह बूँद में मुह डोपती है कुछ कुछ जाती है फिर हँस देती है बाहिर में भस्मा भी जाती है। नायक को उसकी चेष्टाएँ इतनी सुलभ प्रतीत होती हैं कि वह फिर-फिर उन्हें देखने की अभिलाषा से झूठे ही मुट्ठी लाने रहता है। यहाँ चेष्टा का कुछ किनासा काव्य हो उठा है। इस खेल का एक दूसरा दृश्य देलिये—

जौं नई सीसी करी प्रिते जूनीकी दिख ।

फिरि फिरि मुँहि बई गई जौं कँकरीकी पैल ॥

इसके पद्यसर का उल्लेख करते हुए रत्नाकरजी ने लिखा है—'नायक नायिका दोनों कहीं जा रहे हैं। मार्ग का एक मान दो लीनों के चलते चलते

बिहना हो गया है और दूसरा भाग कँकड़ीया है। नायक प्रेम के मारे नायिका को तो घण्टी दुरदुरी पर बिबाए जाता है और स्वयं उसका साथ साथ चलन व चरण कँकड़ीया साथ पर चलता है जिससे उसके पाँव में कँकड़ियाँ चुभनी हैं। उसकी चला स यह बात ज्ञान करके नायिका प्रेमाधिक्य के कारण उसकी पीड़ा से पीड़ित होकर सीधी करनी और नायक को उस मार्ग से चलन से बरबनी है नायक उसका कहना मानकर कुछ दूर तो इस प्रकार मियट कर चलता है कि उसका कँकड़ियाँ न मर्दे पर नायिका का वह शोक बढ़ा कर सादी करता उसे ऐसा भा गया कि वह फिर जानबूझ कर उसके बिनामे तथा उसकी वह मोहिनी चला बेसन के निमित्त ऐसा करता है और वह फिर उसी प्रकार लौट बढ़ाकर सीधी करे।

यहाँ भी सीधी का व्यापार निदोष है पर नायक को इसमें मुक्तानुमति प्राप्त होती है। कुछ उदाहरण और नीचे—

(१) बिहसति लकुचति सी हिये कुच-छाँवर बिच बहि ।

सीधे पर लट को चढी न्याय सरोवर महि ॥

(२) बसत निचसि कुचकोर-रवि करत गीर मुख मूख ।

मनु लुटि गो कोटनु चरत चोटत डेरे पृथ ॥

(३) छोड़े रहँदी बिनि धरै बिनि लूँ छोड़ि बतारि ।

भीड़े डै भीड़े छुबै, ऐसीं रहि नारि ॥

पहले उदाहरण पर एक टिप्पणी देखिए—

‘स्नान नारी का सर्वाधिक धार्मिक धर्म है। स्नानोत्पन्न स्त्रीना वस्त्र उसके शरीर में बिगड़ जाता है। धरती स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार वह बाहों में स्नानों को डँक लेती है। कामव्यस्य डर के प्रभाव में लज्जा की भावना उठीज नहीं जाती। परान्त स्नान में स्नान करती हुई स्त्री के लिए गोपन किया बहुत आवश्यक नहीं है। यह काम व्यस्य संज्ञा के द्वारा व्यक्ति के सामने ही उत्पन्न होता है बिधायक स्वयं पुण्य के सामने। स्मरण रखने की बात है कि बिहारी की नायिका मरोवर में निवस रही हैं। इसका मत पर बिहारी जैसे रसिकों का जयमल मला रहना होना। धन-धानीय नायिका के लिए आवश्यक था कि वह धरती बाहों में स्नानों को डँक लेती। बिधायक की मद्य-मद्य नायिका के सामने कोई पुण्य या नारी नहीं है। अतः कवि को उसके मल-जीव्य के वजन में कोई धानीयता व्यस्य बाधा नहीं प्रतीत हुई। ‘यह

सुख लज्जा घबरा घालीमता का उदाहरण है। इस 'हाव' से घबरा भिन्न समझना चाहिए। इसीलिए इस तरह की भंगिमाओं को मैंने स्वाभाविक कहा है।

दूसरे उदाहरण में नायक ने नायिका को पूरा चुनते समय देखा है। इस दृष्टि में 'हाव' को उल्टे करने तथा लीला को पीछे की ओर झुकाने में उसके कुछ भागों को निश्चय प्राप्त, एवं संभव के संकलने से भ्रमभ्रम तथा चरम सुख उभर गए। इस अवस्था में उसारी बिबसी बेजबान नायक का मन घुट गया।

तीसरे उदाहरण में छींके पर बहोड़ी रखने का नायिका का व्यापार नायक को अत्यंत प्रिय लग रहा है। इसीलिए वह कहता है कि तू बहोड़ी छींके पर न रसा भीर न उठारो। छींक को धक्की तरह से झुका रहा। इस स्थिति में रखने में नायक को लगाव के कारण उसका बस का इन्ट्रिपोसेज्ज उमार देखने का घुम घबरा भिन्नता रहेगा। यह भंगिमा भी छींके के घुने से घपने प्राप्त लग गई है, पर नायक को उसमें बहुत रज्ज का एक मोका मिल जाता है।

उपरोक्त भंगिमाओं में घुम के घबरा पर जो भंगिमा दिखाई गई है वह सर्वाधिक सुंदर और संवेद्य है। यह अपेक्षाकृत अधिक गम्भीरमय है, इसीलिए थोड़ा भी है। उसमें कवि ने जीवन के मयाव को एक ऐसे प्रसंग में बिजित किया है कि वह बहुत ही स्वाभाविक तथा संवेद्यता पूर्ण लग गया है। दोष बिबो में स्नान करके निकसती हुई नायिका अपनी छापीमता (मिस्ट्री) के कारण पाठकों को प्रिय लगती है। पूरा भोड़ने का बिज एन्ट्रिपोसेज्ज (मोमूमन) हो गया तो बहोड़ी रखने का बिज साम्य।

पहले ही कहा जा चुका है कि संश्लेषणा प्रकाशक सचष्ट व्यापार 'हाव' बड़े जाते हैं। प्रमाहीपन के कार्य में इसकी महत्ता का बिदय धाकलन दिया जाता है। कुछ धाकाओं में हाव के कई मेर बतलाए जाते हैं। हाव ही पर न भ्रामक है। जैसा धाकार्य रामचंद्रमुक्ता का मन है हाव को बिभाव के अंतर्गत ही मानना धार्मिक संभव है। हाव एक प्रकार का उद्दीपन है जो प्रती के हृदयस्थ उद्दीपन को उद्दीपन करता है। संवेद्य गूंगार के अतिरिक्त धन्य जर्मों में इनका सिद्ध

कोई स्थान नहीं है। महाविज्ञान का दृष्टि में विचार करने पर यह भी हस्तिक की कोटि में रखा जायगा। प्रेम का यह क्रीड़ा-मग्न रूप मार्मिक जीवन की विनाशिता का अनु रूप ही था। इसीलिए बिहारी ने इस तरह के वचनों में लूब रचि सी है।

हेतिए—

- (१) त्रिबली, नाभि दिखाइ कर तिर हकि सजुनि समाहि ।
गली घली की घार के बली मली विधि बाहि ॥
- (२) इक्या अनदेखो दिया रँग रँग सहि दिवाय ।
पैरलि सी तन में सजुनि बिदा बिताहि छायाय ॥
- (३) ऐकलि सी बिगबलि बिनि मई ओट अजसाइ ।
किरि डफमि की सुगबबलि हाकि कपलिपा छाइ ॥
- (४) बराम बाछब बाल की सुरही घरी लुछाइ ।
साइ कर माहन हँसि रैन करे नदि जाइ ॥
- (५) भीड़नु बामलि मुँह बरवि घोलिनु भी बपयति ।
ऐवि सुहाबलि कर हँसी बामि बाबलि बाति ॥

उपरोक्त सभी उद्धरणों के आधार में निगलना सूचक है। बिहारी की मध्यम पर भी मूक नहीं कुछ नहीं कहना है। पहले उदाहरण के आधार की व्याख्या—
त्रिबली और नाभि का प्रदर्शन—कल्पना प्राप्त नहीं बड़ी या मरनी।
(शास्त्रम तो त्रिबली और नाभि का प्रमाण पदार्थ हीत की निगानी मानी जानी है। यदि यह मार्मिक मुनि का शायक है तो बिहारी की नायिका का बोली छहना यात्राकर का विद्यादान माना जायगा क्यों ?) ओ लोग भार्गव परंपरा का सामान्य ज्ञान रखते हैं वे उपरोक्त बिहारी की मुनिपूना में मोहे प्रवृत्त करेंगे। उदाहरण सं० २ की नायिका के आधार परिक्रम अतिम बौद्धिक तथा मार्मिक है। तीसरे शब्द की मार्मिकता चोरी और मूल्य है। चोप की प्रेमचोड़ा म मार्मिक मूल्य की प्रवृत्ता के साथ प्रेम की गह्राई भी परिचित हानी है। पाँचवें में प्रोत्साहन परिक्रम है पर परम्परा विरोधी विचारों द्वारा इस बिहारी की बोला कुछ बना लिया गया है। पहले बोले में या बिहारी बोला गया है उसकी प्रोत्साहन बिहारी प्रमाणात्मात्र बन गई है क्योंकि उसका चोप के निम्न प्रोत्साहन आधार बौद्धिक मार्मिक संयोजन की आवश्यकता है। त्रिभ बिहारी के लिए उनके चोप के लिए बिहारी

व्यापक मानसिक संवर्धन की जरूरत होगी वह उमरा ही प्रमत्तिपुनः और संवेदनशील होना ।

प्रेम कीड़ा के अन्य रूपों में दाम्पत्य कीड़ा और मिहीचनी का येन पारस्परिक आतिथ्य सम्बन्ध धीमे धीमे का लिये जाइए नृपति की घोर की ओर आति को सम्मिलित किया जा सकता है । इनमें शक्ति कीड़ा के बिना बहुत ही मनोरम और आकर्षक बन पड़ है—

(१) हँसि छोड़ु विष कर डबै, किसे निचीहै मैम ।

उरै और प्रिय के प्रिया जगी बिरी मुन बैम ॥

(२) नाक मोरि नाही कैं नारि बिहोरि छेय ।

सुख छौं प्रिय आँखिनि बिरी बहम ठिब है ॥

पहले दोह में विषमय नबोना नायिका की चेष्टा द्रष्टव्य है । अब उसे नायक का इतना धनिक विस्वास हो गया है कि वह उसे पान सिमाने के लिए पास जाने लगी है । छोटी क बीच हँस कर हाथ ठेका और धीमे धीमे करके प्रिय के मुख में पान देती है । मध्यवर्गिक धार्मिकता से अपरिचित व्यक्ति इसके पूर्ण सौख्य को स्वागत नहीं कर सकता । संकोच लज्जा और विस्वास का संवम बिना को आत्यंतिक एहिय मनोरमता प्रदान करता है ।

दूसरे बिना में नायक नायिका को पान सिमाना चाहता है । वह नाक धिक्कोड़ती हुई कहती है नहीं नहीं मैं नहीं खाऊँगी । नायक बेचाप बार बार आग्रह करता है । नायिका उसके पान मुँह में सेती हुई ऐसा भाव प्रकट करती है मानो उस पर बड़ी कपा कर रही है । इसी समय नायक उसके कोमल अमरोष्ठों को छू देता है ।

इन दोनों बिनों के मारे व्यापार स्वाभाविक है जीवन से यूहीत है इसलिए इनका सौख्य भी समस्पर्शी और हृदयवाही बन पड़ा है ।

प्रेम कीड़ा के लिए जोर मिहीचनी सेम की भी व्यवस्था की गई है । इस सेम का अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं है । यह एक महाना मान है जिसमें आकाशिमन की खुली कूट मिला जाती है—

दोह जोर मिहीचनी छेक न छेकि अथाठ ।

हुरत दिवै कपटाय है, हुरत दिवै कपटाय ॥

घटा पर नहीं हुई नायिका की कीड़ा का एक घोषण रूप देखिए—

द्विजकु चकति इदुकति द्विजकु भुज प्रीतम गछ हारि ।

बही छटा ऐप्रति छटा बिजु छटा सी नारि ॥

द्विजकी की रगति की तरह मादकपानी नाथिका बिरे हुए बादलों की सीमा निहार रही है । प्रियतम के गले में बाँह बाँध कर शयन कर कभी कमनी है और शयन भर कभी टिप्पू जाती है । 'मय प्रीतम गम हारि' की व्यंजना घटा के प्रसंग में जितनी दूह और मनोव्यक्तिगत बन पड़ी है ।

जीन में बनुराई का बदन बड़ा पाग होना है उसका भी एक उदाहरण हमारा—

अरिका बीरे के मिमनु बंगर मो रिग आह ।

गरी अकामक अँगुरी छाठी पृथ पुषाह ॥

अब बदन का एक दृश्य हमारा—

अँगुरिनु उचि अर भीति है उकमि चिठि चक छोह ।

उचि सी हुई बुहुन के बूने काह कपोह ॥

यस सुयोग नगर निवासी नाथक-नाथिका को ही सुख हो मचने हैं ।

बिहारी सनमई में प्रेम-बीड़ा का बहुत बड़ा भार छाँकों के माथे पड़ा है । प्रेम व्यापार में है भी छाँका का बहुत ही महत्वपूर्ण योग । ये छाँकें भी माथारस छाँकें नहीं हैं । वे 'रस निवार संजनु बिए, कजनु संजनु रैन' हैं । दूसरे शब्दों में हाव भाव बढाने आदि में पूरा दख है । 'प्रेम की मारक बनाने के विषय नेत्रों का बड़ा होना उनका महत्वपूर्ण नहीं है बिना उनका प्रपाप बीसप हमीनिए एक बोहों में मनी नाथिका को प्रार्थना करनी हुई बजनी है—

अनिबारे हीरक उगमि किती ब लहमि समाव ।

बह बिसरनि धारै कपु त्रिहि बस हाठ मुजान ॥

इस तरह की छाँकों के कुछ व्यापार उल्लेख है—

(१) बारी भीरु भेदि के किठहु छे उठ जाय ।

चिर बीदि छुरि बीदि सों मचकी बीदि बचाव ॥

(२) बहत बरत रीघत सिघत निघत निघत कजिबाठ ।

मरे भीम में करत है निरन ही सों बान ॥

(३) छुरि बुहुनि के हय अमकि एके न मीने बीर ।

हकरी भीरु हरीन अदी बरत गीत पर मीर ॥

मीन भस्मक में सोयी की धपि बचाकर अपने प्रिय में धीपों धाँस बाग कर सेना मन की रीझ लीझ को संक्षिप्त पूर्वक व्यक्त कर देना पारदर्शी रूप के उन पार जाकर प्रिय की धीपों न मिल सगा—धाँस के इन व्यापारों से सभी परिचित है ।

गुरति मूबक मुहायों के बिना भी मनसई में डेर क डेर बिना बायें । कीड़ाघो की धंतिम परिणति भी ली यही है । धीर यही तो है भस्मक सोयी सामंतों के जीवन का चरम लक्ष्य । सामंतीय नाटक गुरति मूबक मुहायें की एक उक्ति देखिए—धीर हमारे की उक्ति यह हो भी नहीं सकती—

जमक, लमक हौंसी ससक, भसक, छपट, कपटानि ।

ए बिहि रति सो रति मुकति और मुकति अति हानि ॥

अर्थात् जिस रति में जमक लमक छपट, कपट आदि हो वही रति मुक्ति के लक्षण परमानंददायिनी है । दूसरी मुक्ति ही धनिकारिणी है ।

कुछ मुहायें देखिए—

(१) सजुकि सरकि विच बिकर लें मुककि कपूक लन सोरि ।

कर धौंवर की छाट करि कहुवाही मुख सोरि ॥

(२) समरल समर सकोच बस बिसस न टिक ब्याराइ ।

फिरि फिरि बककति, फिरि दुरति, दुरि दुरि बककति आइ ॥

इन पर टिप्पणियाँ व्यर्थ हैं ।

सयोगकामीन प्रवस्था में धातविक धानस के कुछ स्वरूप जो स्नेह, कंप रोमांच ईवम् आदि दिखाई पड़ते हैं उनही गहना सार्विक अनुभावों में की जाती है । 'धात्या न धनमूर्त रत को प्रकाशित

सार्विक अनुभाव करनेवाला धनचरण का धर्म विलेप लक्ष' कहलाता है । इसी सत्त्वगुण से उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक धंय विकार को सार्विक अनुभाव कहते हैं । यह धनचरण का धर्म विशेष सभी रंगों में दिखाई पड़ता है पर प्रत्येक के अपने अपने कारण होते हैं ।

इन सार्विक अनुभावों का प्रादुर्भाव प्रायः क रचन भवन धीर स्पर्श से होता है । इन सभी अवस्थाओं में स्वानुपल कुछ ऐसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं कि उनका प्रकाशन स्नेह कंप आदि के द्वारा देखा जाय ।

मामम द्वारा दान अथवा आदि से बिना प्रमत्तों को प्राप्त किया जाना है वे हमारे शारीरिक संयोजन को अनेक रूप से प्रभावित करते हैं। परिणामतः उनकी प्रतिक्रियाएँ अनेक रूपों में देखी जाती हैं। प्रेम के संबंध में स्पर्श का प्रतिक प्रभाव देखा जाता है। स्पर्शप्रतिप्रिय का पुत्र है। स्वभावात्सुतपुत्रों बसन्तियों और आँसु आदि की रसा ही नहीं करती बल्कि बाह्य समार से हमारा संपर्क भी स्थापित करती है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे सर्वाधिक प्राचीन चीज मूलभूत मानते हुए कहा है। यह बाह्यानुभूतियों का उत्प्रेषण सुरत ही मन्त्रिज्म तक पहुँचानी है। चीन भाषणों की विभिन्न स्पर्श ज्ञान पर इतनी प्रतिक्रिया निर्भर है कि प्रेम संबंधों में स्पर्शों के महर्ष में इसे प्रमुख स्थान दिया जाता है। स्पर्श का विद्युत प्रवाह सारे रोमकूपों में विभिन्न मिहुरन भर देता है।^१

कैसी मूर्खों के प्रसंग में सारी प्रत्य प्रभाव का एक दृश्य देखिए—

रही गुड़ी केनी कल गुड़ि के स्वीकार ।

छागे और चुचाव के भीड़ मुकाबलार ॥

मायक नायिका की बालों मूकना है। स्पर्श से बोना को स्वेद हो आया है और नायिका की कंधी के बाव चीग गए हैं। अपना मात्स्यिक छिपाने के निमित्त नायिका कहती है—रहने को गुँथ चुके केनी देग लिया तुम्हारा डम। हमनी कटिनाई छ मीने बाव गुना स्वे व ब फिर पीने हो मण। इसमें प्रेम की जो कर्षणा की गई है वह स्पष्ट है। पर मात्स्यिक की विविध प्रस्तावविचारा के कारण यह उनका प्रभावतत्पराक नहीं बन गया है।

एक साथ ही कंध स्वेद रोमाच और मधु मात्स्यिक अनुभवों को उन धारण स्वामाधिक महर्ष में देखिए—

जेहन और मिहीनमि छाह, गई हुती पासिछी चीम की नाई ।

आखी कडा कहीं एक गई 'मतिराम' गई बह बाव छडाई ॥

एक ही भील दूर दूर भील ही चीम सी चीम चुचावो कन्हाई ।

कंध सुठये, मन स्वेद बहयो, तन राम उठयो, पैरिचो भरि छाई ॥

—मतिराम

मतिराम के लक्ष्य में मधुर्ष में मात्स्यिकों को एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है इसलिए हमारा कान्ध-जीव्य अष्ट नहीं है। हमनी प्रेक्षण नायिका की मनोदशा को व्यापक दृष्टिकोण में ग्रहण कराने में है जो मन-

स्थितियाँ की तुलना में है उनके अंतर्ध्वंसों के स्थापन में है। पिछले ही दिनों की भाँति नाविका और मिहीननी केसने के लिए आज भी नहीं थी। लेकिन आज के खेल में उस एक अनुपूर्व अनुसृष्टि हुई। इस अनुसृष्टि के कारणों को समझने में यह असमर्थ है क्योंकि पिछले दिनों तो यह बराबर जोर मिहीननी केसा करती थी पर इस तरह का कुछ भी नहीं हुआ। आज क्या बात हो गई? उसके साथ एक ही घर में नायक भी छिप गया और जान बूझकर अपना धरीर उसके धरीर से छुना दिया। धरीर का स्पर्श करते ही उसे रोमांच हो गया धरीर पसीने पसीने हो गया भाँखों में भाँख की दूँधें छा गई। इस तरह का स्पर्श तो बहुत होता रहा है पर आज ही क्यों य सात्विक जनर आए? य सात्विक उस अवस्था विशेष के सूचक है जिसमें प्रेम विकार घनवाने ही उत्पन्न होते लगते हैं। नाविका है भी तो अज्ञात सीधना। किंतु बिहारी के बोहू और मठिराम की लंबाई का तुलनात्मक विवेचन नहीं किया जा सकता। मठिराम ने उक्त लंबाई अज्ञात सीधना के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है वह अपने आप में नाविका के अज्ञान और मोलेपन को बहुत ही स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करता है। यह भीमापन पाठकों को प्रसन्न कर देता है, उनके अंतर्ध्वंस को बुदबुदा देता है, उनकी एहिव भेदना को तीव्र बना देता है। बिहारी का बोहू दूसरे परिप्रेक्ष्य की सृष्टि करता है, उसमें व्यापकता नहीं है बरकता है, जो प्रभावित्य की लंबाई में समाप्त है। एक दूसरे बोहू में बिहारी ने स्पर्शजन्य सात्विक की जो सृष्टि की है वह अपेक्षाकृत गहरी संवेदना उत्पन्न कर सकी है—

स्वेद सजीव रोमांच हुआ गहि बुझही अब नाथ ।

विषी विषी भंग हाथ के हथकेही ही हाथ ॥

पाणिग्रहण संस्कार के अक्षर पर पुनर्निष्ठ बूझ में स्वदस्मी बन और रोमांच कभी कुछ बहल करके हाथ के साथ ही अपना अपना धरम भी एक दूसरे को सीप दिया। पाणिग्रहण की लौकिक रीति (जब और कुछ द्वारा संकल्प होने की क्रिया) के पूरा ही दोनों मानसिक संकल्प से एक दूसरे के हो गए। मानसिक भेदना और उसकी धारीरिक प्रतिक्रिया का क्रिया मूल्य निश्चल है। इसमें व्याप्ति तो नहीं है पर संवेदना की गहराई बहर है।

अब अक्षरजन्य सात्विक का उदय देखिए—

विगत पावि विगुहात गिरि कवि सच अब देहात ।

कवि किछोरी दरसि कै, कवि कजावे कात ॥

उँमुनी पर गोबपन बारण बिण हुण भीकृष्ण ने स्यो । ही बिहारी
गदिका का देखा स्या ही उग्हें कप पाखिक ही आया । इस बमबल मान्दिक
ने भोज का नाम किया—बड़े ही बमबल में बिछाई पड़ा । हाथ के हिनग
ही पहाड़ भी हिया भोज मारा बज बिबल हो उठा । भीकृष्ण मज्जा में
माप हो गए ।

अबमज्जमान्दिक का उदाहरण दप रह गया उस भी ब्रजिए—

आर्य भीतु बिदेस त क्यहू क्यो पुकारि ।

सुनि हुकसी बिहसी हँसी बीरु बुहुनु निहारि ॥

इतना सुनता था कि मिय बिदेस में आ गया है दोनों प्रमियाएँ प्रकृम्भित
हुई बिहँस पड़ी फिर एक दूसरे का देखकर हँसने लगी । मिय के प्रमि को
मान्दिक बताया है उसमें उनका किय जाना मान्दिक ही है । यद्यपि नास्त्रीय
बुद्धि न इनमें कुछ खामी बिछाई पड़ सकती है पर प्रकृम्भिता भी तो भग्न
करण के बम में ही संबद्ध है ।

बिहारी में कुछ ऐसी संदियों की भी मृष्टि की है जिनमें मान्दिकों का
प्राप्तुमात्र न तो दयान में होना है न यथार्थ में धीर न स्वयं में । कबल
नाभीय्य बोध की भावना ही नायिका में मान्दिक, अनुभाव उन्मत्त करने में
समर्थ है । यह बिगिष्ट संदर्भ मान्दिकों का जो परिश्रेय प्रसार करना है यह
नायक को महज ही धीरावयूष बना देता है—

मुख उबारि पिउ कलि रहत रही न गी मिय-सैन ।

करके छोड़, डटे पुकर, गए उधरि तुरि पैव ॥

इस शाह में उग्र नायिका का बिब धंभित किया गया है जो सोने का
बहाना करके मुह डंढर, धाँते बंध करके छोड़ी हुई है । नायक ने बाल-
बिबना जानने के लिए उसका मुह उबार कर देखा । जब नायिका न रहा
नहीं गया उसका हाथ फड़फड़ उठे सारे मरमरा गए, धाँके गुनवाई धीर
प्रियतम की धाँकों से आ मिरी ।

नायिका ने नायक को देखा नहीं है । संभवतः मुह उबार कर देखते
समय नायक के हाथों का स्पर्श भी नहीं हो पाया है । पर मन ही मन वह
उमके धान्दिक नाभीय्य का अनुभव कर रही है । कबल इस मनोभाव में
उमके संदियों का इस तरह धारोक्ति कर दिया कि उमके धीर पर उमके
प्रतीक रूप में अनुभाव धंभित हो उठे ।

इस प्रसंग में वह' का एक सबैया उद्धृत किए बिना यह प्रकरण कुछ अधूरा सा लगता है—

गँगे के चार चक्की दुबही, दुब होगत सूपन मेव बनावे ।
सौज सबाव सखीन सिखायो बड़े सुख सामुने हू के सुभावे ।
बोखियो बोख सदा हैंसि ओमक, ये मन भावक के मन भावे ।
बों सुनि ओझे बरोवन पे अनुराग के अंजुर मे उठि भावे ॥

गोना जाने वाली दुलहिन को सखियों ने—सयानी सखियों ने—बहुत कुछ सीखा दी कहा कि सखी तुम हँस करके कोमल बाजी से बोलना जो प्रियतम के मन को भावे वाला हो। इतना सुनना था कि मन का अनुराग रोमांच के रूप में फूल पड़ा। 'यभी वास्तविक मिरान नहीं हुआ है। अनी स्थिति सर्वथा मानसिक चरित्र पर है। पर मन के साथ छीरे का ऐसा सहज संबंध है कि दानों में एक साथ बैठना उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में यह कल्पनावस्थ अनुभाव का एक रूप है। प्रियतम का कास्मिक सामीप्य रोमांच उत्पन्न करने में पूरा समर्थ है। कहना न होना कि देश का वह अनुभाव विश्व काफ़ी गूढ़ और संवेद्यमान है। पर बिहारी के उपर्युक्त बोहे में कई अनुभाव को एक दूसरे से पूरक संबंध है वे अपेक्षाकृत भविक नाटकीय और संबंध हैं।

कल्पनावस्थ अनुभाव की तरह स्मृतिवस्थ अनुभाव भी होता है। स्मृतिवस्थ कई तरह से आगूठ होती है। नाट्य में प्रायः ऐसा आटा है कि प्रिय से सबकुछ कोई वस्तु पाकर प्रेमी पुलकित हो उठता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं प्रिय मिल गया हो। 'स्वयं वस्तु' कोई प्रेमपरक चेतना उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होती। उस वस्तु पर प्रिया (या प्रेमी) अपने प्रिय को भावना का प्रकषण (प्रोजेक्शन) कर लेती है।^१

एक घंटरंग सखी ने नायिका को बहिरंग सखियों के बीच अंजुर भी का प्रयास कह कर एक मामा दी। नायक की माता पहनत ही नायिका को रोमांच हो आया। उसे देखकर परिहास करती हुई बहिरंग सखी कहती है—

मैं यह लोही में खड़ी भगति अपूरव भाव ।
खदि प्रसाद माका हू भी, तन कर्दव की माव ॥

१—ऐतिहासिक कविताँ की प्रत्यक्षता का मैं सारा, काठो १ १ ४-४४

इस स्मृति अग्य अनुमान का कहा गयी बिहारी में प्रीत भी मूलन स्वर
पर बना प्रीत परना है—

हैं वे चिति सराहिपठ गिरह कबुतर छेनु ।

अबकठ हय मुकचित कहन तनु पुनकति बिहिहेनु ॥

मदति इस वाह के 'अवतग्य' में रणावत श्री न बतमाया है कि नायिका
अंगरी पर बड़ हुन कबुतर उठान बाव नायक को अवतग्य पुनचित होनी है ।
पर नायक को अवतग्य का अनुमान नहीं भी दिया जा सकता है । नायिका
कहत अपन प्रिय के कबुतर को देखकर ही पुनकाममान हो सकती है । मनो
बैज्ञानिक सूक्ष्मता की दृष्टि में यह कल्पना अधिक सम्भवीय प्रतीत होगी है ।

प्रेम या गृहार के प्रसंग में शम-परिहाम बन-बिहार प्रीत मन्वान का
बचन प्रायः होता पाया है । शम परिहाम में कभी तो हृदय की अनुकूलता
प्रती प्रेम को मनोप न आता है प्रीत कभी हृदय
शम परिहाम बन की अग्य प्रचार में अत्यन्त आश्चर्य बतलावून ईय
बिहार प्रीत मन्वान न अग्य हो उठती है । बिहारी में इस तरह के
शम परिहाम की अपेक्षा भी नहीं करना चाहिए ।
बन बिहार के अनुकूल वातावरण में प्रेम को या आशना मिलती है, उसकी
कभी भी बिहारी में मिलेंगे । इन दोनों की अन्तरा मन्वान के बनन अधिक
है । फिर भी शम परिहाम प्रीत बर बिहार का बचन । मिलही जायगी—

काज महा के काज कठ परि रहे घर कोई ।

मोरम चाहत फिरत ही, यी रस चाहत नहि ॥

परिहाम का यह एक अग्य उदाहरण है । नायिका कहती है—बुझ ना
मर्म करो बचन में क्यों येन रहूँ हा पर जान को । मैं मुझे अग्य तरह
जानती हूँ । तुम इन्द्रिय रस आशना दिये हो पायन नहीं । इन परिहाम में
नायिका न अपना गूढ़ मनस्य भी प्रकट कर दिया ।

अब परिहाम का एक दूसरा उदाहरण देखिए—

हैं दिगुनी पहुँची गिरह अति दमिता दिखाई ।

बलि बावन की स्वीति मुनि को बलि, मुझे पयाह ॥

नायिका नायिका के रूप गुण पर रीझ गया है । वह नायिका की मर्मी में
प्राप्तता करना है कि उसे दिया है । मर्मी नायक का परिहाम करने हुई

कहती है कि तुम्हारी रीति बड़ी बेइश्वर है। तुमने जैंगली घुमा नहीं कि पहुँचा पकड़े। बलि बामन का बुरात घुन काके नसा तुम्हारा बिस्वास खीन करेगा ?

कछित कछित जम स्नेह कम कछित अरुन मुख दीव ।

बन बिहार थाकी तरुनि करे थकाई बैन ॥

यह बन बिहार का प्रति सामान्य उदाहरण है। ह्रीं मयपान में बिहारी का मन अपेक्षाकृत अधिक रमा है—

(१) ईसि ईसि हेरति नवज तिय मर के मर कमजाति ।

बककि बककि बोकति बचन, अककि अककि कचजाति ॥

(२) बिपद कबीकी नवज तिय कहकि बाकबी सेइ ।

रबी रबी अति मीठी अमति, ज्यौं ज्यौं डोठयो बैइ ॥

(३) कछित बचन अचहुकित रय कछित स्नेह कम जोति ।

अरुन बदन रुनि मर कबी करी कबीकी होति ॥

मर का मुख्य प्रयोजन है रति बीड़ा की सावकतापूर्ण बनाना। मर के कारण ससक ससक कर सपटना सजीली होने पर बी सगका को छोड़ रति बीड़ा में डीठ होना घोमा में मरबन्ध निहार का घाना आदि आदि ऐसी स्थितियाँ हैं जो तत्कालीन रसिकों की आकांक्षाओं के अनुकूल पड़ती थी। इसलिये सतसई में इनका अनिवेध भी आवश्यक हो गया।

सामंतीय वातावरण का प्रभाव बिहारी के वियोग वर्णन पर इस तरह पड़ा है कि मान और संविज्ञादि के बिनों की सतसई में बहुलता हो गई है।

वियोग के चार प्रकारों—पूर्वानुराग मान प्रवास

वियोग और करण में संविज्ञादि के वर्णन मान के ही अन्तर्गत

आएँगे।^१ पूर्वानुराग को कुछ आचार्यों ने अभिलाष

मान मानकर समीर वियोग के अनुपपुच्छ समझा है। पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह अभिलाष मान ही नहीं झूठ सकता। थोड़ी देर के लिए इसे मान भी लिवा जा सकता है किंतु कुछ समय के अनंतर इसमें विदीपात्मक तीव्रता का आधिनाश स्वामात्मिक हो जाता है। पहले हम मान का ही प्रयोग करेंगे।

१—विहार के लिए देखिए, ऐतिहासिक कविता की श्रेष्ठता काफ़ी आचार्यजी तथा, आरती, पृ० १६६-७०

प्राचार्यों के मतानुसार भग्न ने दो भेद हैं—अवयमान और ईर्ष्यामान । प्रलयमान तिर्हुतुक माना गया है यह स्मित आदि से अभिमत हो जाता है । यह मुख्यतः क्रीडात्मक है इसे मान नहीं मान का मान नाटक समझना चाहिए । अतः विषाद की विभीषी भी वास्तविक स्थिति का आदिर्भाज इनसे सम्भव हो नहीं है । ईर्ष्यामान में मूलतः ईर्ष्या रहती है पर इनमें क्रीडा क्वचन अभिमान ओष भूषा उदासीनता अथवा आदि अनेक प्रकार की भागवतिक अवस्थाओं का समावेश हो सकता है ।

प्रलयमान का एक मनोरम खेल देखिए—

सुतर सीढ़, कबे बचन, करति कदितु मग बीठि ।

कहा करी, है आति हरि हेरि ईसीही बीठि ॥

सखी ने किसी प्रकार नायिका को मान करना मिलाया है पर अपनी असमर्थता का इस्तेमाल करती हुई नायिका कहती है कि हे सखी मैं किसी तरह भीहों को टेढ़ी बालों को रथ घेर मग वो कनोर बना मैती है । किंतु हाथ में क्या कर उनको देखकर जाँतों में ईसी या जाती है । ऊपर कहा जा चुका है कि इस तरह के मान को विषाद के अनर्गल रचना परंपरा का अनुगोप ही समझना चाहिए । यह एक तरह की प्रेमरसना जोड़ा है जो प्रेम को उद्दीप्त करती है । अतः इसे उद्दीपन के भीतर रचना अधिक उपयुक्त समझना है ।

ईर्ष्यामान के वर्णन में बिहारी की चित्तवृत्ति ध्वजित रही है । परंतु हमारे भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार की भागवतिक अवस्थाओं को न विभजितकर प्राक् नायिका के आक्रोश तक ही कवि सीमित रहा है । राधिका के वर्णन में तो बिहारी की दृष्टि बाह्य रति-चिह्नों पर विद्यमान रूप से स्थिती है । वे पंक्तियों में पीक अवस्था में अवनत मान में महाकर, अर्थात् किञ्चन छापी में मगलन अथर्वों पर वनवन बाहों पर बाटी का चिह्न पुरों में लसाई घोर आसक्त्य अवस्थाओं में महाकर आदि का वर्णन ये इनके अनेक रूप विस्तार देते हैं कि राधिका के वर्णन को उदात्त बना नहीं कर सकते बिहारी ने अत्यन्त सूक्ष्म । राधिका नायिका के वर्णन शोभ के इन बाह्य चिह्नों का स्मरण इस नाम के सभी वर्णियों में प्रेमपूर्वक किया है किंतु अपना चित्तना दिसाकर बिहारी ने

क्रिया है उसका और मोर्चों में नहीं। मणिपुत्र देव पचाकर भावि कहि बीच बीच में संस्था की मानसिक स्थिति भी व्यक्त करते हुए बिलाई देते हैं।' निम्नलिखित वाक्य इस संबंध में प्रतिनिधि उदाहरण माना जा सकता है—

पञ्चम पीठ, अथवा अष्टम, धरे महाबाहू बाब ।

जाहूँ मिझे खु यकी करी, भले बरे ही थाह ॥

ये बिहारी ही पति के अपराध के सूचक हैं और पति का अपराध ही रीढ़ी-
मान का कारण है। बिहारी ने स्वयं कहा है—

पतिरितु श्रीगुण गुण बद्ध माप, माइ श्री सीतु ।

जातु कथितं हि जातिं पूर्वं स्वयम्? मनु, कथयन्ति ॥

धर्मात् पति धीर शत्रु के प्रहण (अपराध) तथा मुक्त (स्वभाव) से मान धीर मान नहीं की रीति बुझि होती है । उसके प्रसन्नवदन रमणी का मन तथा नवनील का वस्त्रा कोमल है निम्नर तथा कठोर हो जाते हैं ।

पूर्वानुपपन्न क कर्तव्य में भी विहारी न न भावेनान्नमक तीव्रता दिखाई पड़ती है और न सवेदनान्नमक सहसाई। यह पूर्वानुपपन्न मात्र ही हर्षा में विभक्त हुआ है—इतिवृत्तात्मक और चित्त विकसन। पहले हर्ष का चर्चा तक संबंध है नाशिका की किसी न किसी दशा का विवरण उपस्थित किया गया है—

बाबू, तुम्हारे क्या की बड़ी सीति वह कीज ।

कासी कागज पत्रक रंग कागज पत्रक पत्ती ५ ॥

इसमें धनित-रुपा का जो कथन किया गया है वह किसी प्रकार काभ्यो-
पित नहीं बन पाया है।

विश्व की विकासता के अन्तर्भाव उसकी विश्व परिवर्तता का ज्ञान
 दिया गया है वह अनेकान्य एवम् और अधिक प्रबल है—

इत ही उत उत ही हते, किन्तु न कोई धराति ।

अहं न परति, बहरो धई, फिरि आवति फिरि जाति ॥

गायिका से विमुक्त होकर गायक के धर्म्य देश में चले जाने को प्रब्राम कहा गया है। इसमें ममिता संगीत पाहुता बौद्धत्व चरित्र धवीरता धम्बिरता लम्पयता उम्माह भूर्त्ता प्रादि काम-वशाएँ प्रवास बेगो जाती हैं। नजीर विधोय इस स्थिति में धर्मिक स्वाभाविक है। किसी के द्वारा संदेश भेजना और चित्र-लक्षण भी प्रब्राम-जन्म विधोय को बड़ियाँ हैं। बिहारी में इन समस्त बड़ियों को लाजा या सज्जा है।

उपर्युक्त काम-वशाओं में प्रथम बार का संबंध चरित्र से है तो छिप छः का मन से। प्रथम बार दयाया का मूल प्रेरक भी मन ही है, उसकी प्रतिक्रिया शरीर पर उन रूपों में होती है। नीचे कुछ वशाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

संताप

- (१) आये है आये बसब आये हैं की राति ।
साहस कहे मनैह बख सखी सखे दिन जाति ॥
- (२) धी/पाई सीधी मुकटि बिरह बरति बिहवात ।
बिहारी छुटि दुबाव गो सीटी छुई ब गात ॥
- (३) जिहि निहाय दुपहर रई भर माय की राति ।
तिहि उसीर की राबरी करी आबरी जाति ॥

आयनी प्रंपावनी की भूमिना से आभाव रामचन्द्र दुखन में आयनी क विवाह पत्र का विवचन करने हुए निगा है—‘आयनी का बिहू बलम नहीं नहीं धर्यानि पूष होने पर भी मज्जा की हब लक नहीं पकूष पाया है, उसमें मांथीय बना हुआ है। इसकी उत्पत्ति जान की करामान नहीं जान पड़नी हबब की तीव्र वेदना क धरब सकल प्रतीत होती हैं। उनक धनगत त्रिन पगबो का उम्मेग हांगा है वे हुरवम्य छाव की अनुकृति का आमान हैन बाने होने हैं, बाहर बाहर न गाव की भावा लापन पाय मानवक नहीं। आये क दिनों में भी पड़ामियों लव पकूष उन्हें बर्षन करने बाम बानम का मुमाव जल मुगा दामन बाने तार से बम छाव आयनी का नहीं है पर उर्त्ति उमर बेरतायक धर्म पर त्रिनकी दृष्टि रगी हैं उनकी उमरी बाहरी मान जोतार नहीं जो प्राप अजामर हुआ करनी है।’^१ इस उद्गम्य म

१—बाबाई रचबई हुक बावनी धरावनी चतुई चरदाल भा ब लना चरा नृबिधा १ १४ ।

जिसने निपेक्षात्मक भाव्य हैं वे सब बिहारी को दृष्टि में रखकर लिखे गए हैं—उनके संताप-बचन को लक्ष्य करके। तात्पर्य यह है कि बिहारी का संताप-बचन भाषा मूलक है, वह नाप-जाप की पद्धति पर आधारित और अन्तर्मूलक है।

दीर्घकव्य

- (१) करी बिरह ऐसी, लख गीत न क्षणतु मोलु ।
हीरी हैं बसमा बखनु कोई कोई न सीलु ॥
- (२) इत आकति बलि, लाति उत बली, कछातक हाव ।
कही दिहोरै से रही कगी बसासनु छाव ॥
- (३) गीत न बानी परति है परही बिरह लपु बाधु ।
अकति दिखै की बौदि, हरि, बिबे तिहारी नाम ॥

जिस तरह संताप बचन में कवि की दृष्टि ताप की भाषा पर रही है उसी तरह इस प्रसंग में भी उसकी दृष्टि धार्मिक बुद्धिमत्ता और धार्मिक सीधता पर रही है। काव्य का यह रूप भी भाषा की मनुता पर आधारित है, हुनक नत सचेदना पर नहीं।

मस्तिष्कता का एक उदाहरण पूर्वानुप्राण के प्रसंग में दिया जा चुका है।
सम्पत्ता आदि सम्पत्ता सम्पत्ता और मरन के एक एक उदाहरण बखिद—

पिब के प्यास गही गही रही कही हैं नारि ।
आपु आपु हीं आरसी बलि हीमति रिध्वारि ॥
(सम्पत्ता)

बिरह बारी बलि बीगबनु कही न बहि के बाउ ।
मरी भाहु बलि भीतरी बरसत बाव जोगार ॥
(अम्माव)

कहा कही बाकी दसा हरि मानव के हंस ।
बिरह ब्याव बरिधी बखे मरिधी बयो बसोष ॥
(मरन)

जो बन्तुएँ संयोग में मुक्तानुभूति जगानी रहती है व ही विषया में दुःखानु-
बिरह के उद्दीपन भूति जगाने का मार्ग करती है। वाक्य में इनका वर्णन
कवि परंपरा से करत आए हैं। बिहारी की रचितियाँ भी परंपरा के ही
मैस में हैं—

(१) धीरै भौंति भएष म चीमार, चंदन बंद ।

पति बिनु अति पारत बिपति माभूत मारत मंद ॥

(२) ही ही बीरौ बिरह बस के बीरौ मन गाई ।

कहा जानि प कहत है, समिहि सीतकर नाई ॥

समस्त परंपराओं के पालन के बावजूद भी बिहारी के बिरह-वचन में
बिरह-वर्णन के कुछ कुछ नए स्वर उभर हैं जो उनकी अष्ट काव्य प्रतिभा
काव्योचित स्वर व शोणक हैं। (बिरह-वचन ही क्यों संयोग और
सौंदर्य वचन के विनिमय में भी उभर देखा जा सकता है।) इन तरह के
शोहों के कुछ उदाहरण दिये—

(१) धाँही न आव सदा रंग बिरह दुखे पात ।

धन ही कहाँ बसायति बदन बदन की बात ॥

(२) अरुनि तेज रीझाव बह पकड़ी जगो म बार ।

तो रीझो बर को मपी रीझो कोम हज्जार ॥

(३) अहाँ अहाँ टाही बन्नी स्वामि सुमय मिरमोद ।

बिन हूँ उन बिनु यदि रहनु पगनु धाँही बह दीव ॥

(४) स्वामि सुरति करि राधिका लकति तरनिश-सीद ।

धौंसबनु करति तरौम की निमकु करीही नीद ॥

(५) का के मीरे कुमुम छी गई बिरह बुझिबाइ ।

सदा ममोपिनि सखिनु हूँ नीदि पिछानी जाइ ॥

इन बाहों में व कौन भी ऐसी बिचोरनाई है जो उन्हें धन काश में
परिगणित करती है? यह प्रश्न सर्व इन दोहों के लिए उठना महत्त्व
नहीं रखता बिना भूखलेखन की मजह्ज के लिए खतरा है। यह कहा जा
सकता है कि ये रचितियाँ अगम्य नहीं हैं बाहरी नजर कोन से इनका मकसद
नहीं है पारोक्षिक वाक्य का अनुशासन बनन इनमें नहीं है। पर ये
निरीक्षणक कहने को सही घर में काव्य के गुन नहीं हैं। कुछ मोर

निश्चयात्मक (पात्रिणिक) ढंग से कहना चाहें तो कह सकते हैं कि कथन की स्वाभाविकता और मनोबैज्ञानिकता के कारण इन दोनों को अछूट माना जा सकता है। किन्तु स्वाभाविकता और मनोबैज्ञानिकता जैसे मोल शब्द इनके काव्यात्मक सौन्दर्य के मापक नहीं हो सकते।

वास्तव में इन दोनों की अछूटा बचाव की काव्यात्मक पक्ष में निहित है। यथार्थ की जो पक्ष संताप-बीजस्व-प्रयत्नक दोनों में दिखाई पड़ती है वह अस्वाभाविक और मान भीतिक (फिजिकल) है। इसलिए उनकी भाव व्यञ्जनाएँ बाह्यतापरक हैं जो संवेद्य नहीं हो पाती। मानसिक यथार्थ का संबंध हमारी संवेदनाओं और कुछ दुःखात्मक अनुभूतियों से होता है। भीतिक यथाप का अपने भाव में गहराई है बसते वह मानसिक यथाप को उसके वास्तविक संबंधों में व्यक्त कर सके। 'घोंघाई सीधी' वाले बोहे को सीधिए। 'घीघी का घोंघाना' भीतिक यथाप है पर ताप से उसका जो संबंध स्थापित किया गया है वह बड़ा ही लचर और मूखहीन हो गया है—इसके शब्दों में वह संबंध प्रवास्तविक और मिथ्या है। वैयक्तिक दृष्टि से उसका सामयकारिक महत्त्व हो सकता है पर वह सार्वजनीन दृष्टि से सहृदय संवेद्य नहीं हो सकता।

इसीलिए आचार्यों ने काव्य में वैयक्तिकता का निवेद्य किया है। टी एस ईलियट का निर्बैयक्तिकता का सिद्धांत भी इसी बात की पुष्टि करता है। काव्य में निजी अनुभूतियों और विचार घने प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। रोमैटिक काव्य को लेकर इस पर तरह-तरह की मांगताएँ प्रस्तुत की गई हैं। इस सिलसिले में इस बात का विचार नहीं किया गया कि सामयकारिकता के करिबों में व्यक्तिगत से ही संबंध रहते हैं—निर्बैयक्तिक से नहीं। बिहारी वहाँ पर्याप्त निर्बैयक्तिक हुए हैं वहाँ उनका काव्य अछूटा के बराबर पर पहुँच गया है।

संताप बीजस्वपरक दोनों तथा अपरिच्छिन्न दोनों में एक अंतर और है। पहले प्रकार के बोहे में जिस सत्य की व्यक्तिगतता की गई है वह व्यक्तिगत सत्य को इस तरह ढँक लेता है कि उसकी पूर्ण व्यञ्जना नहीं हो पाती। काव्य में जो कुछ व्यक्त किया जाना है वह वैज्ञानिक सत्य की तरह जड़ सत्य नहीं होता प्रत्युत पूर्ण सत्य होता है। उसकी व्यञ्जना आगे बढ़ कर कथन की पूरता प्रदान करती है। परन्तु दोनों का कथ्य अधिक पूर्ण और व्यञ्जक है। वही नहीं हममें व्यक्त संवेदनाएँ अपेक्षाकृत नहीं अधिक बूझ और सूझ हैं।

पहला ही बोझा सोचिए । मायक के विदेह जाने का प्रसंग है । सली कहती है कि धमी तो प्रथम विद्योग में दुःखित मायिका के भगो में स्वामाधिक रंग तक नहीं धाया । यह प्रथम विद्योग के क्लेश को ही अभिष्यक्त करके नहीं रह जाता बल्कि इससे प्रथम विद्योग का पूरा बुद्धान्तरक बनाकरण व्यंजित हो उठता है । इनता ही वही उक्त विद्योग में तो बेचारी की वह रक्षा हुई पता नहीं इस विद्योग में गया होया । प्रथम विद्योग से दुःखन शरीर धीरे उसके रंग (वांछता भावि) से बिछू पूरी अभिष्यक्ति पा जाता है ।

दूसरे बोझे के कथ्य की नीज यहूरी भगोर्ब्रह्मानिक कांस्तबिकता पर टिकी है । मायक अत्यंत तीव्रनामी बोड़े पर खार है । अग उसे प्रिय के पास पहुँचने में ठनिष्ठ भी बिसंब नहीं गया । चित्तु रब्बे का रास्ता हजार कोस दूर माझूम पड़ने गया । सारेजबाय के मित्रांत में परिचित मोमो को हमकी स्वामाधिकता में किसी तरह का संबंध नहीं हो सकता । मानसिक मत्स्य को शैतिक राय से इन तरह बोधा गया है कि उसकी स्वामाधिकता बनने के स्थान पर अन्धी बननी है ।

तीसरा बोझा अन्वयिक मायिक है । शारीर्य शरणावली में वह स्मृति शंकारी कहा जायगा । स्वाम धीरे यमुना तट का जितना गहरा संबंध है । इसी को विचारानुपम (association of ideas) कहते हैं । यमुना तट पठा नहीं कितने संदर्भों धीरे अनुकूलियों को आकर्षित करने में समर्थ है । स्वाम के साथ उठना जितना गहन संबंध है । इसलिए स्वाम की स्मृति घाते ही मायिका का यमुना तट की धीरे देखना सहज है । यमुना तट घनेक स्मृतिमों से लिगटे रहने के कारण इनता उत्तेजक (evocative) है कि धर्मों से धर्मियों की साथ निकल पड़ती है । उनके धर्मियों से तट का बन तयवर को साथ हो जाता है । साथी संवेदना का यह परिणाम हमने अत्यंत सहज धीरे प्रवाद बना बना है । स्मृति-अव्य संवेदनाधा के अन्वयसंबंधों की इन रंग से मुद्रित किया गया है कि सब निराश्रय के अत्यधिक भयंकरों बन गए हैं ।

यही बात अन्वय बोझे के संबंध में भी कही जा सकती है । हम दाई बा मर्ये शर के पीछे बुझुमनी में निहित है । हमका बिब इनता संवेदनाशील है कि बिछू वेदना अपनी गुरुता में व्यक्त हो उठती है ।

शुंभारेतर भाव व्यञ्जना

शुंभार के अतिरिक्त बिहारी में अन्य प्रकार की भावनिष्पत्तियाँ भी मिलती हैं। इनमें तीन रूप हैं—व्यंग्योक्तियाँ अति परत रचनाएँ और प्रकृति वर्णन। नीतिपरक रचनाओं को इसके अंतर्गत नहीं लिया सकता क्योंकि वे मूलतः भाव से नहीं बल्कि नीतिमत्तात्मकता से अनुप्राणित हैं। व्यंग्योक्तिओं के संर्जन में भी यह प्रकृति उठना या सकता है। पर इनका संबंध कौरी नीतिमत्ता से नहीं है और न कोरा बुद्धि-विकास ही उन्हें अनुप्रेरित करता है। एक विशेष भावात्मक स्थिति में जब बाकी सब हो उठती है तो व्यंग्योक्तियाँ अपने आप अभिव्यक्ति या जाती हैं। इससे ये मुख्यतः भावानुप्रेरित ही होती हैं। ये कभी सोमजस्य मन की प्रकृति होती हैं तो कभी घात मन की। सोमजस्य मन से प्रादुर्भूत व्यंग्योक्तियाँ प्रायः शास्त्रमूलक होने के कारण कटुतावाली बन जाती हैं और कटुतावाली को न तो जीवन में स्वस्थ माना जाता है और न साहित्य में। घात मन से निकली हुई व्यंग्योक्तिओं में भी जो सीटी बूटकी खूँटी है उसकी मार अधिक सीधेपूँची बिन्दु लौपी होती है। इनके पीछे भी अवचेतन (सबकोसस) मन में छिपा हुआ कोई-न-कोई विरोध होता है। पर यदि यह विरोध व्यक्ति विशेष के प्रति प्रवर्धित किया या रहा है तो व्यंग्य की मुक्ता समाप्त हो जायगी। इसके विपरीत व्यक्ति के प्रति अधिक होनी व्यंग्य भी उठना ही सामान्य और प्रभावशाली होगा।

पित पित मारक बीगु गति, भर्षी भर्षी सुठ सोयु ।

बिर हुबस्वी शिय जोइसी, समुझै बारज बोगु ॥

व्योतिपी भी बो पुन रत्न प्राप्त हुआ । जब उन्होंने उसकी कंठली बना ली तो देखा कि यह संस्था में पितृ मारक योग पड़ा है । इससे उनका बहुत शोक हुआ । पर जन्म में बारज योग समझ कर वे मन ही मन परम प्रसन्न हुए । जान बची लाका पाए ।

बिहारी रसिक ने एक सुन्दरी से बहनामे का नाटा जोड़ लिया है । पर इस नाटे के मूल रहस्य का समझती हुई उसकी उसी कइती है—

बहकि न इहि बहिना पुखी बज तब बीर बिगस ।

कधि न बड़ी सखीक हूँ बीर जोसुबा मरै ॥

‘हम बहनामे की बात तुम नहीं समझती इनके बचकर में न फँसना । इससे कभी न कभी बहुत बड़ा मतर्भ हो जायगा । तुम अपनी तरह ही सबको छल जानती हो । बीर के बोंसले में बहुत उपाय करने पर भी मैं नहीं बचता ।

उस मध्यकालीन युग पर यह व्यंग्य बिना छल है उससे कही प्रतिक्रिया के युग पर । न तो उस समय उस संबंध की पवित्रता का निर्वाह हो पाता था और न वह भाव ही होता दीस पड़ता है । भाव की पाश्चात्य संस्कृति में बहिन या ‘बहिन जी’ का सर्व व्याख्या की अपेक्षा नहीं रहता ।

इस तरह की सूक्ष्म व्यंग्योक्ति का रीतिकालीन कविता में सर्वत्र अभाव मिलेगा । व्यंग्य बिमोह की सर्वना बहुत बड़ी प्रतिभा की सींग करती है । इस प्रतिभा के अभाव में व्यंग्य बिमोह के नाम पर मढ़ीबा की रचना होत लगती है, जिसके तमूने धातुनिक हास्य रस की डेर की डेर रचनाओं में प्रत्यक्ष करने को मिलते रहते हैं ।

बिहारी ने अपनी सतसई में जहाँ एक ओर परकीय प्रेम के संबंध में काफ़ी बोहे लिखे वहाँ उसका गंभीर उद्देश्य भी नहीं भूले । इस व्यंग्योक्ति से यह बात काफ़ी स्पष्ट हो जाती है । इस अर्थगति का मुख्य कारण यह है कि सामंतीय वर्ग में प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं था । वह प्रेम के नाम पर मनोबिमोह किया करता था । प्राचीन मादरकों की तरह निश्चित बिनाश भी वे नहीं कर सकते थे । यह युग न उस बीमर की व्याख्या को स्पष्ट कर सकता था और न रसिकता

महाराष्ट्रों से उठर सकता था। नैतिकता के मय में उमन घासे को मजबूत नहीं कर पाया था। इन द्विषा की स्थिति में नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं रह पाता। वह धीरे भी बिकल हो जाती है। इस बिगड़ उठना पर बिहारी ने बहुत ही चुनन हुए प्रहार किए हैं।

भक्ति एक रस है जब यह निबिबाह हो गया है। यह मजबूत हो सकता है सामाजिकीकरण की दृष्टि में यह अत्यधिक सीमित है। रस धीरे सामाजिकीकरण पर बिचार करते समय हमारे हृदय के भावों की दृष्टि सबदा पाठक या महदम पर रखी है। किन्तु कर्ता या कवि की काम्य प्रणिया को छोड़ का परिणाम यह हुआ कि काम्य नैतिकता के घटन पर आ गया। हमने कवि के उचित मूल्यांकन में बाधा भी दी। बाध्य में बिना मजबूत बिम्बपण शाना मित्राओं के आधार पर ही किया जा सकता है।

भक्ति मावना को ही सीखें। मजबूत कवियों की रचनाओं का रस में होना है कि भक्ति उनके जीवन का अनिवार्य भाग हो गई थी। इसीलिए उनकी कविता भी बहुत ही भावपूर्ण बन गयी। रीति कवियों की भक्ति रचना या तो परंपरा का पालन करती है या जीवनदम नैतिक धीरे शोभन आधार मय प्रस्तुत करती है। बिहारी की भक्ति-परक रचनाओं को हमी कोटि में रखना चाहिए क्योंकि वे धन काम के धर्म बन में कवियों की नैतिक द्विषात्मक स्थिति में नहीं पड़ धीरे न वेन की कोट में उन्हें हर-दर से ठोकरें खानी पड़ी।

परंपरा पालन के कारण बिहारी की भक्तिपरक रचनाओं में न मावदन मय विमता है धीरे मौलिक उद्भावना। पर यह कहना कि शृंगारिक रचना के आधार में ज्ञान मुक्ति का निषेध किया है अत्यंत आधारभूतक है। 'बिहारी और उनका साहित्य' में डा. इन्दुलाल शर्मा धीरे परमानंद शास्त्री ने संयुक्त रूप में उपर्युक्त पाठ्य की है। धन मन की दृष्टि में सेखर द्वय में बिहारी के निर्माणगत का सीधे उद्घुत किए हैं—

जी न भ्रुगति विष मित्र की, पूरी मुक्ति-मुँह दीन ।
जी बहिष संग सख ही करक करक हू कीन ॥

चमक, लमक हौसी, ससक असक, धनद छपयानि ।
ए जिहि रति, सो रति मुक्ति और मुक्ति अतिहानि ॥

इन दोहों के आधार पर अद्भुत निष्कर्ष निकालने के पहले यदि रत्नाकर जी की टीका देख ली गई होती तो इस भाँति के लिए धनकास न मिलता । बिहारी रत्नाकर में प्रथम दोहे की टीका यों की गई है—

उद्यम जी से गोपियों का बचन—यदि [मुक्ति] प्रियतम की मुक्ति नहीं है (अर्थात् प्रियतम प्राप्ति की मुक्ति के अतिरिक्त कोई और वस्तु है), [तो हमने ऐसी] मुक्ति के मूढ़ में ब्रूम भोंकी (अर्थात् ऐसी मुक्ति से ह्व बाज भाई) [और] यदि प्रियतम छँय में प्राप्त हो तो [हमको] नरक की भी बड़क नहीं है ।

क्या इसमें शृंगारिक भावना के आशेष में मुक्ति का निषेध किया गया है ? मान लीजिए आपकी रत्नाकर जी द्वारा कल्पित प्रसंग नहीं अच्छा लगता है और आप उस दोहे को मौलिक प्रसंग देना चाहते हैं । हमसे किसी को मतपत्र नहीं हो सकता है । पर इस दोहे में प्रेम के बिना सम्बन्ध और विलास पक्ष को चित्रित किया गया है, उसे भी तो लहर धँबाव नहीं किया जा सकता । इस शुभ एकात्मिक प्रेम में राय की जो सीढ़ता है वह इसके मानवीय भ्रूय को काफी बढ़ा देती है । इसमें मुक्ति का निषेध देना तो बीसा ही है बीसा मूर के 'हरि, हीं सब पठितन को राउ' में मूर का पारिविक शेष देना ।

इसी प्रकार दूसरे दोहे में भी मुक्ति का निषेध नहीं माला जा सकता । काम्य सत्य और वस्तु सत्य का भेद न करने पर इसी तरह के अद्भुत वक्तव्य शील पड़ते हैं । बिहारी स्वयं कहते हैं—

मोहूँ बीसी मोपु, ज्यों धनेक अचमपु बिबी ।
जी बाँधी ही सोपु सी बाँधी अपने गुलपु ॥

वास्तविकता यह है कि शृंगारिक कविताओं की भाँति भक्तिपरक रचनाओं में भी बिहारी ने परंपरा का पालन किया है । भक्तों के मोटे सिखानों को ही इन्होंने अपने दोहों में व्यक्त करना उचित समझा । सामान्य भक्तों की भाँति इनका दृष्टिकोण भी असाधारणिक था । साक्षात्कार के संबंध में इन्होंने जो कुछ उद्गार व्यक्त किए हैं वे भक्त कवियों की भावनाओं के

मेस में है। आत्मनिवेदन संबंधी दोहो के विषय में भी यही बात नहीं जा सकती है।

हिंदी साहित्य के भक्ति नाम में भक्त कवियों ने भक्ति की जो मर्यादमी बहाई उसका प्रकाशनों में मत-मतांतरों के कुछ गुण टट्टर में चके। तुमसी की सर्व-धर्म-ममत्त्व की भारणा तथा घूर की स्वच्छ असांप्रदायिक दृष्टिकोण आसांप्रदायिक दृष्टि ने इस निष्ठा में जो स्तुत्य कार्य किया उसका हटना गर्भीर और व्यापक प्रमाण पड़ा कि सांप्रदायिक विरोध को धाई सर्वथा नष्ट किए पड़ गई। विभिन्न संप्रदायों में बीसल होने पर भी रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त कवियों ने किसी विरोध मत के प्रति सादर नहीं व्यक्त किया प्रत्युत अपने पृथक्पृथक् भक्त कवियों द्वारा निरिष्ट सामान्य भक्ति मार्ग का ही अनुसरण किया।^१

बिहारी ने अपने समय के सभी कवियों का प्रतिनिधित्व करते हुए लिखा है—

अपने अपने मत ली, काहि मचावत घोर ।
जो रवी सबकी देखी, पड़े नन्द किशोर ॥

इसी दृष्टिकोण के कारण राम कृष्ण रजुराज मुरारि सभी समानार्थी हो गए थे। इनकी सांप्रदायिक रंग से इन कवियों ने नहीं देखा। वे बिदनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'राम और कृष्ण में वे नाम कोई भेद नहीं समझते थे। भगवान की एक सामान्य भावना लेकर ही अपनी कविताएँ गाया करते थे। यही कारण है कि राम की सीता कृष्ण के नाम पर और कृष्ण की सीता राम के नाम पर कह देते थे। घूर और तुमसी न भी ऐसा ही किया है।'^२

भक्त कवियों और संतों ने प्रायः बाह्य पांडित्य का व्यर्थ बतलाते हुए बाह्यबाह्य धार्मिक प्रतीति में अपनी भावना प्रकट की है। रीति कवियों ने हम विषय में स्पष्ट हम में जो कुछ लिखा है वह उन्हीं भक्तों और संतों की परंपरा में पड़ा है—

१—डा. पदम मिश्र रीतिबद्ध कवियों की वैयर्थ्यता, भा० भा० समा., ६ ४१०।

२—बिहारी ।

- (१) लप माया लप लप लप, सौ न पकी काम ।
मम काचै नाचै हुषा, साचै राचै राम ॥

—बिहारी

- (२) काहे को बरबोर की मोहि की छाईबर,
काहे को दिगंवा डे दूष छाह रहिये ।
काहे 'पद्माकर' लो काय के कइस हित,
सँकर समीत सीत नाथ लप सहिये ।
काहे का बपोरो जय काहे को लपौरी लप
काहे को प्रपंच पंच पावक में रहिये ।
रैन दिव काखे काम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ।

—पद्माकर

सत्य भाव की उपासना में बाणी का बक हो जाना स्वाभाविक होता है। सकल और अपासक क्योंकि सदा भाव के कारण उपासक और उपाम्य बहुत कुछ एक चरित्र पर प्रा कृत होते हैं। इसके फलस्वरूप बहुत उपासक देने के लिए भी उस्ता होन निकलता है। मूर के रंग पर बिहारी ने इस तरह की उक्तिवाँ कही है—

- (१) बीर मति रहि है बिरहु अर देखी मुरारि ।
बीर मोसी चाहै, बीर मोसहि तारि ॥
(२) मोहि तुम्हें बाड़ी बहस, को बीर कदुराम ।
अपने अपने बिरहु की, मुहुन बिबाह्य काज ॥
(३) बीरि यह अनाकरी, बीरि परी गुहारि ।
तुम्हीं मनी तारन बिरहु कारक कारन तारि ॥
(४) बन्धु भये का बीर के को छापी रजुछह ।
तुं तू बिरहु ही कूटे बिरहु कहाह ॥

यद्यपि अन्तों की देखा-देखी रीति कबियों ने भी अन्तर्गत के प्रति अत्यन्त निवेदन किया है पर इस निवेदन में वह तन्मयता और बिभोरता नहीं है।

रीतिकवि कवि थे। अन्त कवियों की भाँति उनका

आत्मनिवेदन पूर्ण जीवन अन्तर्गत को कभी समर्पित नहीं हुआ।

इसलिए इनकी कवितायाँ में वह विह्वलता दूखना इनके साथ अभ्यास करना है। कभी कभी इनकी रचनाओं में जो भावपरक

बिहारी का दियाई पढ़नी है वह एक दिवस सामासिक स्थिति की उपलब्धि है । बिहारी की शृंगारपरक रचनाया की भाँति भक्तिपरक रचनाया में भी भावेगमयता नहीं रही मिलती पर इनमें भी मध-मृग संयम और संवेदन दिखाई देता । एक उदाहरण सीखिए—

तसि लीरस हरि राखिअ-लखइति कर अचुराग ।
त्रिदि बजइति निरुज मग पग पग होत प्रभाग ॥

इसके साथ ही मनिराम का भी एक बोझ देखिए—

राधा मोहन छाब की जिन्हें न भावत भेद ।
परिपो मुखी इबार बस, तिमकी आँखिन लेह ॥

भावग और संवेदना की चर्चा पीछे करी उठाई का चुकी है । यहाँ यही उमरा पिछलेपन हम समिपत नहीं है । मनिराम के दाहे में कवि की भावेगमयता पूरी उँचाई पर पहुँची हुई है । पर बिहारी के दाहे की संवेदनशीलता महदयों पर अधिक गहरा और ग्यायी प्रभाव डालती है । मनिराम के दाहे में बात भावेपात्मक ढंग में कह दी गई है पर बिहारी के दाहे का कथ्य पाठना में कुछ अधिक मौन करना है । या हम प्रचार के दोहे बचन कम हैं ।

भक्त-मनों के बैराग्य संयोग नारी-निषा धारिक बिना हम परंपरा का पूरा निर्वाह नहीं किया जा सकता था । धन रीति बतियों की प्रस्तावितियों का निवेद्य बिहारी ने हम पर विषय ध्यान दिया है । इन दोनों में भावों की प्रमादता ना नहीं है पर अदोषित जरूर है—

(१) कम करि मुँह तरहरि पारी इहि परहरि चित जाड ।
विषय-मृग परहरि अरु तरहरि के गुन गाड ॥

(२) दीरख भाँस न केहि दुख मुन सारि दि ब भूत ।
बई बई बचो करातु है, बई बई मु कयू ॥

(३) या मरगाराचार की उर्ध्वि पार को आह ।
तिय दुखि दाया मादिनी गई बीच ही आह ॥

प्रभु के त्रि संस्पर्श बिधा की मात्र महदय करत हीन पड़न है उन्हें बिहारी ने देखा जा सकता है । पूरे रीतिवात में हम तरह में मानस्य प्रभुति ब्रह्म-विषय विन बहूत कम मिलेये । इन दृष्टि में भी बिहारी बेजोड़ है—

- (१) क्षमि रसाख सीरम सन मधुर मादसी धीम ।
 डीर डीर मूमल धमत, भीर भीर मधु धीम ॥
- (२) कइबाने एकल बसत, अहि मधुर मृग बाण ।
 जगत लपीवत सौ किन्नी, बीरम बाण निदान ॥
- (३) पीठि रही अति सखन बच, पीठि सदन-मन भौंह ।
 देखि दुपहरी सेठ की कइही चाहति बौंह ॥

पहले उदाहरण में बसंत-श्री का इतनी कम रेखाओं में जितना व्यंग्य-
 कर्म कीया गया है उतना अत्यन्त दुर्लभ है । यथार्थ कहती बातें करन अपनी
 मस्त समृद्धि में निमग्न हो उठा है । दूसरे उदाहरण में बसन्त की प्रभा-
 ता हो गई है । तीसरे उदाहरण में एक पंक्ति के सहारे निदान की भीषणता
 के पूर्णतः व्यक्त करने में कवि को पूरी सफलता मिली है ।

अभिप्रेक्षिक के प्रस्तावना

(अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए कवि को भाषा का माध्यम ग्रहण करना पड़ता है। कभी ये अनुभूतियाँ इतनी सघन होती हैं कि बार्णिक माध्यम में अपने आप फूट पड़ती हैं और कला के समस्त उपकरण समाप्त हो जाते हैं।) कभी यह भी होता है कि कला के पूर्वनिर्दिष्ट उपादान अनुभूतियों को व्यक्त करने के प्रसार प्रवाह को रोकता नहीं पाते। वे स्वयं उलट पलट कर बिखर जाते हैं। किन्तु अनुभूतियाँ व्यक्त नया साधन ग्रहण कर लेती हैं। ऐसा प्रायः रोमैण्टिक कवियों के साथ होता है। इसलिए रोमैण्टिक कवियों में परंपरागत रचना में रचना कभी भी स्वीकार नहीं किया। किन्तु एक विशेष साधन को स्वीकार कर जननेवाय कवि कोलाहल अधिक महसूस होने हैं। फलस्वरूप उन्हें कलात्मक निर्माण का विशेष ध्यान रहना पड़ता है। बिहार में जो कलात्मक सफाई का-र्य साक्ष-गम्य दिगम्बरी देनी है वह उनके सज्जनता और मननता का परिणाम है।)

निम्नानुसार अनुभूतियों को साधन देने के लिए कवि उनका समूहन कर (सर्वां उन्हें बिना कप में प्रस्तुत करता है। इस समूहन के लिए वह लो-नुर्म रीत्याया आश्रय रंगों समुचित परिवेश का पूरा ध्यान रहना है। माध्यम

संमूर्तन (इमेज) बाह्यकार का अनुकरण नहीं होगा वह मुख्यतः कवि की कल्पना और अनुभूतियों से निर्मित होगा है। बाह्य जगत के रूप-वित्यास से प्रभावित होकर कवि जब उसे भाषा में उतारने का प्रयत्न करता है तो उसे स्वतः नय सौंदर्यबोधोन्मादक संदर्भ मिल जाते हैं जो विषय और भावों को एक प्रतीकात्मक अर्थ भी प्रदान करते हैं।

संमूर्तन की दोषपक्ष मनोबैज्ञानिक परिभाषा है— Image is a revival reproduction by memory in the mind of some sensuous experience undergone in the past including the visual, auditive, tactile, and other impressions associated with it. अर्थात् भूतकाल के बाह्य अवस्थात्मक संस्पर्शत्मक तथा अन्य अनेक प्रभावों के संयोग से जिन स्मृत्यात्मक अनुभूतियों को पुनः स्थापित किया जाता है उन्हें संमूर्तन की संज्ञा दी जाती है। पर कला में बाह्य जगत से गृहीत भूतकालीन स्मृतियों का पुनः मूजन होता है। इसी से तो कहा जाता है कि कला प्रकृति के प्रभावों की पूर्णता है। इन पुनः मूजन में अनेक प्रकार के संमूर्तनों—बाह्य अवस्थात्मक संस्पर्शत्मक आदि—को आबक्ष्यकानुसार संमिश्रित भी कर लिया जाता है। इनके सुन्दर और दीर्घत्वपूर्ण संमिश्रण से संमूर्तनों की प्रभावोत्पादनशक्ती बहुत बढ़ जाती है। रस रस रस स्वर्ण समी का समावेश काव्य को अत्यधिक उदात्त बना देता है। आधय और आर्त्तवन की अनेकानेक चेष्टाओं और अनुभावों का बिज संमूर्तन विज्ञान के ही अंतर्गत आया।

'छात्रारकठ काव्य-विश्वों को दो ओरियों से बाँटा जा सकता है—संज्ञित विश्व ऐनी (आइरेन इमेजरी) और उपसंज्ञित विश्व ऐनी (डिमरेटिव इमेजरी)। मुख्यतया बाह्य जगत् पर आधारित रहने के कारण संज्ञित विश्वों को रेखाचित्र की समिधा दी जा सकती है। रेखाचित्रों में आर्त्तवन के रूप सौंदर्य और उसकी चेष्टाओं आदि की संक्षिप्त किया जाता है। काव्य में उपसंज्ञित विश्वों को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। इन विश्वों में कवि अपने बनीभूत भावों की अप्रभुतों के सादृश्य विधान द्वारा बहुत सरल और मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है।^१ इनके अनिश्चित विशेषणों और सम्म

१—Ronald Peacock the Art of Drama P P 96

२—डा. कश्यप सिंह ऐतिहासिक कवियों की ऐकन्यवदा भा० ३ तथा काव्यी १ ११६-४४

धनियों से भी भावों का संमूर्तन किया जाता है। यही पर हम विशेषणों और धर्मधनियों पर आधारित संमूर्तन की विशेषता करते हैं। इसके परचाए लघित तथा उपमक्षित चित्रों का विशेषण किया जायगा।

(भाबोहीपन में उपयुक्त और चित्रोपम विशेषणों का चयन काव्य-विशेष का विशिष्ट उपकरण है। सामान्य विशेषण बहुत कुछ घटाए और धर्म रखने के कारण हमारी भावना को आधार नहीं दे पाते। (काव्योपम विशेषण इन्द्रियमात्र मूल रूप की मृष्टि में अधिक समय होते हैं।) वे स्पष्ट रूप से विशेष किया धर्म या कवि का चोदन करते हैं। वे अपने आप में विशेष के आधार नहीं हैं। इनके मूल में कवि का अपना बुद्धिकोण भी निहित है। वस्तु के प्रति अपनी भावनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए ही विशेषण का चुनाव किया जा सकता है। उसका पर्यायवाची विशेषण कवि का धर्म प्रेम प्रस नहीं दे सकता। इस तरह के उपयुक्त विशेषणों के चुनाव में बिहारी बेबोड़ हैं। नीचे कुछ विशेषणों के उदाहरण दिए जाते हैं जिनका चुनाव बिहारी बीबिनी के आधार पर किया गया है—

बंदू बिलोडन (दो० ७६) अनियारे नमन (दो० ८६) घड़ेरी नैन (दो० १२७) मलचोही चपनि (दो० २१६) मगीहें नैन (दो० ४०३) धमसोहि नैन (दो० ४११) विभोछें नैन (दो० ४२२) निपोड़े नैन (दो० ४३८) उठव परे उरांन (दो० २६६) सुरेंव कुमुनी चुनरी (दो० ११८)

बिहारी न धर्मों के लिए प्रायः एक ही विशेषण का प्रयोग किया है। ऐसा करने के मूल में दो कारण दिखाई पड़ते हैं। एक तर्क बिहारी सजग कलाकार होने के नाते धर्मों का गूढ़ जान-बूझकर प्रयोग करण है। दूसरे उनके बोहों की संकीर्ण सीमा में बहुत न विशेषण या भी नहीं सकते थे। आधारमूलक विशेषण बिहारी में कम ही मिलेंगे। इनके विशेषणों को त्रिधामूलक (actional) कह सकते हैं। अपने विशेषणों के स्वभाव या क्रिया को प्रकट करने के लिए उन्होंने क्रिया-विशेषणों का प्रयोग अधिक किया है। पर इन विशेषणों के मूल में बिहारी की अपनी मनोवृत्ति भी अनुभूत है। 'मलचोहि' 'मगीहें' 'धमसोहि' आदि विशेषण विशेष के विशेष स्वभाव के साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि बिहारी का प्रेम मुख्यतः शीघ्रतात्मक था। जन धर्म के विशेषण बिहारी के विशेषणों से सर्वथा भिन्न हैं। 'वृष्टि चरति' पंखियां कुगुहार्द में कवि की मनारथा का अन्वयम निश्चय प्रकट हुआ है।

मुक्तियों में प्रायः यह देखा जाता है कि परिस्थिति विशेष में प्रेम्भवा की कल्पना करनी पड़ती है। विशेष्यों में जिस विशेष्यमण का विधान किया जाता है वह बहुत कुछ प्रायय के दृष्टिकोण का—इसे कवि का दृष्टिकोण भी कहा जा सकता है—परिभाषक होता है^१।

(परिबल निर्माण के निमित्त काव्य में ध्वनि-विशेषों का विशेष महत्व है।) कविता और कथा-साहित्य में ध्वन्यात्मक चर्यों द्वारा उत्तमनात्मक प्रति ध्वनि-विशेष ध्वनियाँ पैदा की जाती हैं। (काव्य में प्रतिध्वनियाँ मूलतः चर्यों पर चोट करती हैं) और कथा-साहित्य में बाह्य संवाद का बोध कराती हैं। कविता में इनकी गुण का महत्व है तो कथासाहित्य में इनकी विनात्मक शक्ति का।

रीतिशास्त्रीय कवियों ने प्रायः तीन प्रकार की ध्वन्य-ध्वनियों का प्रयोग किया है—(१) रचनात्मक (२) अनुकरणात्मक और (३) व्यंग्य। प्रथम ध्वन्यध्वनि सर्वाधिक सुन्दर और सबसे कम व्यंग्य है। दूसरी स्थिति पहली और तीसरी की मध्यवर्तिनी है।

रति के विशिष्ट प्रसंगों में धुतिमयूर ध्वनियों की रचनात्मक सोचा देखिए—

(१) खँधरियाँ मगडैनी करी बनडैनी चुरी तबडी तब तौरे।

—दास

(२) मिथुन खों मधुबाह के किछि पौडें सुकी सुक की सुकरीनी
को बिछियाव बडावत बाब मराव क बाकवि ओ सुगरीनी।

—तीर

परविहारी की रचनात्मक ध्वनियाँ इतना शोर नहीं मचाती। वे प्रेम्भवा समित और व्यंग्यपूर्ण हैं—

(१) बुकि रसाव सौरभ सने मधुर माधुरी गीन।
खीर खीर खीरत खीरत खीर खीर मधु-मधु ॥

१ (२) रमित मृग मर्यादनी धरित दान मधु नील।
मंद-मंद भावत बस्यी कुँवकुँव-समीर ॥

१—विस्तार के लिए देखिए—रीतिशास्त्रीय कवियों की 'प्रेमध्वन्या' का प्रेम्भवा की भाषा ऐसी^१ ब्रजभाषा।

‘मौलन’ ‘मौवन’ तथा ‘मौर-मौर’ स मौरों का पावन होकर पुण्य रथ की आग साकष्ट हाना शौटना विन पड़ना बहुत ही श्रेष्ठी तरह व्यक्त हो उठा है। इसी प्रकार हमारे दोहे में ‘रनिन’ और ‘पगवनी’ शब्द भी ध्वन्यात्मक हैं जो एक परिबेग विवेक का निर्माण करने में पूरा समर्थ हैं। इन माध्यम में संस्तुत व कवियों ने भी बहुत सुन्दर बालावरण निर्माण किए हैं। भवभूति का एक उदाहरण दक्षिण—

गुह्यकुङ्कुलीर धर्मिकवराधुरकार संवेक्षित
 कन्दलेप्रवचनद्वाराकृतिमृतप्राग्भाभीमिरतये ।
 अन्ताकीर्ण्यं कुरूपरतरासंरोषिकुर्ण कच
 ओतोविर्गमकाहृषर्षारवा पादरमणार्ण सरित ॥

इसमें हमारा का बालावरण अपनी पूरा समझना में चित्रित हो उठ है। (ध्यायावारी कवियों में निरुत्ता और पन न ध्वन्यात्मक शब्दों से रमान्मक बालावरण का बहुत सुन्दर निर्माण किया है)।

मनुष्यात्मक शब्द-ध्वनि का एक उदाहरण बसिंद—

कबो सोंकरी कुंज मग करत धौंढ मुकरात ।
 मंद मंद माधन दुर्ग लुंविन आवत जात ॥

‘धौंढ’ और ‘मुकरात’ शब्द माधन और धौंढे का ध्वन्यात्मक चित्र उपस्थित करने हैं।

नीचे प्रकार के दो शब्द हैं जो माधन-ध्वनि (एनीमिड) याद माउंड) द्वारा धर्मिष्पति होने हैं। उदाहरणार्थ—

कहवाहाति तन तदमर्द कधि कग की कधि काह ।
 मरी कौंड कीह मरी ओहनु खेति लगाह ॥

हरी मरी मरी का हवा और धूप में शिमे डालने और चमकने देनकर लोग कहने हैं कि गेन गूब महमहा रहे हैं। लम्बाई के प्रयोग में इनके सुगमार्थ का पाप होता है और लक्षणा के सहारे इसमें स्वल्प प्रसन्न और माधन पोषण की ध्वनि प्रतीति होती है। इसी तरह देव के ‘उमहूयो परल न’ में लक्षार्थ द्वारा कथापिष्य का इतिवृत्ताही चित्र उपस्थित किया गया है। काव्य-मौल्य की दृष्टि में ऐसे शब्दों का विषय महत्व है।

रीति कवियों ने अपने काव्य का धनक प्रकार में धर्मिकन किया है। भवभूति को समझ करके इन काव्यों का धर्मिकन बहुत कुछ प्रचुर रहे

बायगा। इसके लिए कवियों को बोधी नहीं ठहराया जा सकता—बहु पुण का धर्म बा। इस धर्मकति को उस समय के किसी भी सांस्कृतिक क्षेत्र में देखा जा सकता है—चित्र में वास्तुशिल्प में संगीत में। यदि यह कहा जाय कि उस समय का सारा जीवन धर्मकतिमय हो चुका था तो कोई अत्युक्ति न होगी। पर यह स्वाभाविक था कि जीवन की सहज स्फूर्ति लो जाती। काम्य के लिए भी यही सत्य है।

इस धर्मकति का परिणाम यह हुआ कि रीति काव्यों में अनेक मनोरम चित्रों की व्यवस्था हो गई। यों तो चित्रमयता भाषा का सहज धर्म है पर चित्रों की इतनी बहुसंख्या प्रायः ही और नहीं दिखाई पड़। चित्रों के प्रतिरिक्त रचनी और धर्मकार का समावेश भी प्रसाधन के रूप में इन्होंने किया है। इसलिए बिहारी के काव्य-प्रसाधन का विवेचन करने के लिए भी हमें उनकी उपकरणों का ध्यान रखना होगा।

पीछे लक्षित चित्र बोजता (Direct Imagery) और उपमसित चित्र-बोजता (Figurative Imagery) की बात कर आए हैं। लक्षित चित्र-बोजता वह है जो सहज र्वंसे लक्षित हो जाती है। इसमें प्रचलितवा रेखा

और रंदा का प्रयोग होता है। उपमसित चित्र-

चित्र-बोजता बोजता का संर्बध साधुसंयुक्त धनकारो से है।

वहु अनेसाइत अधिक ठूठ और व्यंजक होती है।

रेखा-चित्र केवल स्बूल वाक्य चित्र नहीं है उसमें अन्य स्पर्ध नय रस की भी समाविष्ट समझना चाहिए। काव्य में केवल वाक्य चित्र

(Visual Imagery) का जिसमें अन्य स्पर्ध धारि का

लक्षित चित्र बोजता समावध नहीं होता है विशेष मुख्य नहीं धाका

जाता। ऐसे वाक्य चित्र प्रायः बड़ और मोटे रूप

में वस्तुमुक्ती होत है और वे सूक्ष्म इन्द्रियबोध को संतुष्ट करने में प्रायः प्रसक्त पीछ पड़ते हैं।^१

रेखा-चित्रों में जिस वस्तुओं मुद्राओं धनका धर्मिमाओं को धर्मिष्ठ किया जाता है उन्हें इतना वास्तविक नहीं होना चाहिए कि कला में उनकी नकला ही न हो सके। वे भी वास्तविकता का भ्रम ही पैदा करती हैं। इसे धीरे

स्वप्न राशियों में बों बहुत होया कि बस्तुन कसात्मक बिज बास्तबिबता क किनी-न-किनी मण पछ बा स्वप्न करने हैं ।

बास्तबिबता का यह मया पछ बनि की दक्षि संस्कृति धारि से बच्छी तरह संबद्ध होता है । इन बिजों में हमारी उद्बुद्धता पर भी प्रकाश पड़ता है । पर उनकी मध्यमता हमने मही है कि वे बिज उद्बुद्धियों को प्रष्ट करत हैं बहिरु हसम हैं कि वे किम सीया एक पाठकों की मविदताओं को जयाते मयबा उनके मविगो की भीष्ट बताते हैं ।

बुद्ध रेखा-बिजों का देखिए—

कंडरपनि मंडन ! किमें बैठी ब्यौरति बार ।

कच बेंगुरिनि बिज बीटिरे बिजबति मंडकुमार ॥

इस बिज में पाँच रेखायाँ का प्रयोग किया गया है—कंडरपनि मंडन बिमें बैठी ब्यौरति बार कच बेंगुरिनि बिज बीटिरे प्रौर बिजबति मंड कुमार । ये सभी रेखाएँ बिज को पूर्णता प्रदान करती हैं । एक बिद्येय मंडन के समुत्पन्न मध्यपूर्व उपकरणों की बुन मिया गया है । (प्रवेगित उपाराशों का बुनकतापूर्वक कचन प्रौर उनका मुनविपुष संवृष्ट बिहारी के बिजों की बभापन बिद्येयता है) ये दोनों बाँने बिहारी के प्राय प्रत्येक बिज में मिलेंगी । कभापन बिज प्रौर बास्तबिबता में धनन होता है । पहले में कभापन मय का उद्बुद्धन होता है तो दूसरे में ब्रह्मानिष्ठ मय का । कभापन मय में कभाकर की धनी बुद्धि निहित होती है । हमारी बुद्धी बिद्येयता यह होती है कि यह एक बिद्येय बाध्यम (भाव रेखा रंग धारि) में धनी व्यंजकता में निर रहता है जब कि बास्तबिक बस्तुएँ मय के साथ परिवर्तित होनी रानी हैं । यह बिज हमारी ऐंडिय केनता को छूने में समर्थ है । हमारी व्यंजकता को छीक में परगन क लिए पचाकर का एक बिज बरिए—

काकति ब्रह्मधी दिति ब्रह्मि ब्रा की बोन,

मीर कडि, काई केलि-मंदिर के द्वार पर ।

एक बा मीतर मु एक ब्रह्मि ये घरे,

एक कर ब्रह्म एक कर है किवार पर ॥

पचाकर का यह वर्णन बहुत बुद्ध कोगेरीपी के निरष्ट पहुँच गया है । धीनम हो पीनियों में यह उड़ हो गया है । पर बिहारी के अनर्पुल बिज में 'म्यौरति' प्रौर 'बिजबति' में बिज की मत्रीक बना दिया है ।

धरे बहोई जिनि नरै, जिनि लू खेहि अछारि ।

बीकै है लोके सुनै, पैसिई रहि नारि ॥

पहले बिज की अपेक्षा यह अधिक स्थिर है। अपनी व्यंग्यता के बावजूद भी इसकी साम्यता ऐतिहासिक हो जाती है। यही पर बिहारी की नाम स्फुरितता देखी जा सकती है नव्यताप्रकटा नहीं।)

संवेदना मूलक बिज दूतरे है—

(१) अक्षित बचन, अथ अक्षित दग, अक्षित स्वर कम जोति ।

अदब बदन लखि मय कही, नारी कुलीनी होति ॥

(२) अक्षि अक्षि अक्षिबन अथ अक्षित अँगु मौर अँगाराह ।

आधिक उठि खेरत अरुकि, आबस मरी अम्हाह ॥

(३) आखे की आरें नखी सुगत अक्षिज के टीक ।

गीरें हैं कोचन हिसत बिहिसत आव कपोल ॥

प्रथम दो मुद्राएँ हैं—एक मय बिहारी की सुघरी रतिघाटा की। दोनों में कवि की पर्यवेक्षण-प्रतिफल एवं नयन की सूक्ष्मता को देखा जा सकता है। यहाँ पर भी वही चारोंकी है जो उस समय के बिहारी और बाल्युत्पन्ना में प्रकट हुई है। 'अक्षिबन' वाले दोहे में व्यक्त मुद्रा और इनमें व्यक्त मुद्राओं में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। उसे बिज में भी बीजा का सपना है पर ये बिज की रेखाओं में नहीं घंट सकते।

इनके लिए बिज नहीं असंभव की आवश्यकता होगी। रेखाओं में अक्षिज बचन कैसे चिह्नित किया जाएगा? आधी कुली हुई आँखों स्वर कम की कपोति अदब बदन लखि मय-बिहारीता आदि को रेखाओं में बीजा का सकता है पर चरों 'अक्षिनी होति' को तो प्रकाश की उचित व्यवस्था द्वारा ही दिखाया जा सकता है। उसी तरह दूसरे दोहे में 'लख अक्षिबन अथकुनिज' को तो रेखाओं में आँका जा सकता है पर लखि लखि अक्षिबन अथकुनिज को नहीं। इसमें सभी प्रतिमाएँ रेखाओं में नहीं चिह्नित की जा सकती। एक को पकड़ने में दूसरे की छोड़ना पड़ेगा। दोनों बिज काही सफोरन है। तीसरे बिज में रेखाएँ कम हैं पर द्वितीय पंक्ति प्रभावोत्पादकता में प्रथम दो बिजों का प्रतिस्पर्ध कर जाती है। इसके अनुसंधानों में मानसिक प्रतिक्रियाओं को अत्यंत कीटल से प्रविष्ट कर दिया गया है जो पाठकों को सहज ही संवेदना पूर्ण बना देता है। 'अक्षित बचन' और 'लखि लखि अक्षिबन' द्वारा

संश्लिष्ट विषय अपने आप में पूर्ण हैं पर वे किसी विशेष मानसिक भाव को उत्पन्न नहीं करते इसलिए वे पाठकों को अनुभूति में बना पान में असमर्थ हो जाते हैं। दोहा सं० १-२ में मानसिक या धारीरिक तत्त्वों के अनुपम में संश्लिष्ट किया गया है। अनुपम भावभीती प्राणी है उसे केवल भौतिक तत्त्वों में ही संतोष नहीं होता। वह भावजन्य और अध्यात्म जगत् की भी जानकारी है।

✓ कलात्मक मर्मता में संबद्धता (collage) का सर्वाधिक महत्त्व है। यहाँ ये हमकी अभिव्यक्ति दुहरी होती है—संबद्धता किसी बस्तु विशेष के लिए होती है और एक विशेष प्रकार की होती है। हमारे सन्दर्भ में इसका अर्थ यह किसी प्राणि विशेष के संबंध में होता है और बना होने पर हम एक विशेष प्रकार की मनोरंजना में पहुँच जाते हैं। यह संबद्धतात्मक प्रतिबिम्बों में मिल जाती है। संबद्धता की भाँति ही संबद्धता का संबंध भी बाह्य जगत् में होता है। पर जानो का मुख्य अंतर यह है कि एक में निजीपन (व्यक्तिगत) का अभाव है जबकि दूसरे में बाह्य जगत् के संबंध में अंतर पर जो प्रतिबिम्ब होती है वह व्यापक और मार्मिक होती है जबकि दूसरे में वह बहुत कुछ सीमित और निजी होती है। इसलिए संक्षेप में एक आभेदभावना होती है जो संबद्धता में नहीं दिखाई पड़ती। पर उनमें संबद्धता की गंभीरता और मर्मस्पर्शिता उतनी नहीं आ पाती। पहली को कलात्मक और दूसरी को रोमैन्स कहना वह सही है।

(विहारी ब्रह्मविद्या कहते हैं। उनकी अनुभूति में संबद्धतात्मक है। यह विद्याना उनका उपर्यक्त चित्रों में दर्शा जा सकती है। यह दूसरी बात है कि किसी में अनुभूति अर्थात् मात्र हो उठी है किसी में कम। यह मात्रात्मक विद्या में सब ही परिचित होना है। इस मात्रात्मक का विवेचन करने के लिए फिर पीछे पीछा पड़ेगा। दो सं० १ सं० १-२ की ओरता अर्थात् मुख्य अंतर और प्रभावदायक है। हमारे उत्तर में भी जाना होगा कि उनमें अभिव्यक्ति अनुभूति का संबंध जिन बाह्य जगत् में है वह अर्थात् सामाजिक है और उन दोनों का अंतरात्म्यमान इस रंग में दिया गया है कि पाठकों की समझ उत्कृष्ट हो उठती है। प्रिय के साथी मित्र की कल्पना मात्र में—अर्थात् सामाजिक मित्र नहीं होता है—जो वास्तविक अनुभव उत्पन्न होते हैं वे सभी प्रत्यक्ष मनोभावों को व्यक्त कर देते हैं। वे अनुभव ही विद्या

के रंग देखा है और वे इतने समान हैं कि पाठकों में सुरंत अनुकूल प्रतिक्रिया अनुभूति उत्पन्न कर बैठे हैं। कुछ लोगों की दृष्टि में इनमें 'कंचनयनि' की प्रपेक्षा अनुभूति का सूक्ष्मतर स्तर धाकमिल हुआ है।

मेरी दृष्टि में 'कंचनयनि' में संरक्षित चित्र उससे अधिक प्रभावोत्पादन क्षमता रखता है। केवल अनुभाव-विमान से ही चित्र की श्रेष्ठता नहीं स्वीकार की जा सकती। चित्रों की उत्कृष्टता चित्र होने में नहीं है क्योंकि चित्र शासन है साध्य नहीं। शासन के रूप में उनकी उपलब्धता-असफलता का निरूपण किया जा सकता है। चित्रों के साध्य से अनेक अनुकूल-प्रतिकूल भावों को—प्रभावपूर्ण रूप से धाकित किया जा सकता है। कवि बिहारी ही सूक्ष्म और जटिल भावों को समुचित कर सकेगा चित्र सतना ही नामो पस और श्रेष्ठ होगा। 'कंचनयनि' दोहों में एक विशेष मुद्रा में नायिका का नायक को देखना चित्र की अनेक भावनाओं को—आशा-निराशा राग-विराग बिठा उत्सुकता उत्कंठा—को बुरेब देगा है जो उक्त दोहों द्वारा संभव नहीं है।

बिहारी के इस प्रसिद्ध दोहों को भी देखें—

कहा करिठे राग को पोर काज बेहाज ।

कहुँ मुरली, कहुँ पीठपट, कहुँ मनुज, जनमाज ॥

यह भाव अस्तव्यस्तता का चित्र नहीं है—घाँसों की प्रभावोत्पादकता की अनुभूतिपूर्ण संभवता का चित्र है नायक की प्रेम-विह्वलता का चित्र है। प्रेम विह्वलता का यह आतिशाय्य घाँसों के सौंदर्य और प्रभाव का सूचक है।

चित्रों में कहीं सांकेतिकता कम और अभिव्यक्ति-शक्ति अधिक हो गई है कि चित्र प्रायः निष्पन्न हो गए हैं—

भीड़ कबै घाँसह उछलि, और मोरि मुँह मोरि ।

नीकि बीकि सीतर गई बीकि बीकि सी पोरि ॥

कवि भावों को समुद्र करने के लिए रंगों का प्रयोग करता है। रंगों के उपयोग से चित्र की व्यञ्जकता भी बढ़ जाती है। वह प्रकृति में बिखरे हुए

वर्ण-चित्र हैं। कभी वह अनुकूल वर्ण-बोजना से नायिका के

वर्ण-चित्र

हैं। कभी वह अनुकूल वर्ण-बोजना से नायिका के सौंदर्य को धाकपूर्ण बना देता है, तो कभी विविध

रंगों के धातुपाठिक मिश्रण से सौंदर्य को उभार देता है। कभी वह प्रतिकूल

जनों को सामन साकर प्रिय के सौख्य को बन्योना बनाता है तो कभी बर्न रिबर्नन से उमकी मानसिक-स्थिति का आकाशमक बोध कराता है। (इस प्रकार के बर्न-बर्नो के निर्माण में बिहारी की रस प्रविणीय है।)

अनुकूल बग-बोझना के संतर्पण व भिन्न प्राप्त हैं जिनमें बहुत कुछ अनुकूल बर्न-बोझना मिलते-जुलते रंगों (मैबियरबर्न) का प्रयोग इस रंग से होता है कि सौख्य में नवीन आकर्षण था जाना है—

भई तु कवि तन बसल मिथि बरमि सके सु न बैब ।

आँग घोष आँगी हुरी, आँगी आँय-बुरे न ॥

नायिका संशयी घोंगिया पहन हुए हैं। उसके शरीर के रंग से बपड़े का रंग ऐसा मिल गया है कि बपड़ा भक्ति नहीं होता। घोंग की कमर में घोंगिया छिप गई है किन्तु घोंगिया में घोंग नहीं छिपना। घोंग इस समय नायक को नायिका की अद्भुत छवि दिखाई पड़ती है। नायिका की जिन अद्भुत छवि की व्यंजना इन दोहे से होती है वह आत्मशक्ति होने के माध-माध रीति कानीन सामंतीय मनोवृत्ति के जिनमें अनुकूल है।

बर्नो के मिश्रण में कवि को बुद्धि आत्मिक का निर्वाह करना पड़ता है। एक ओर उसे बिज बिद्य के लिए अनुकूल रंगों का चुनाव करना होता है और दूसरी ओर रंगों के आनुपातिक मिश्रण पर बर्नो का मिश्रण ध्यान देना पड़ता है। बिहारी ओर रस में विभिन्न रंगों के मिश्रण की कला विशेष रूप से दिखाई देती है। इनमें भी रस की छायाओं (वेदम आठ कमर) की अद्भुत पकड़ में बिहारी की दृष्टि अनुकूल है।

बिहारी के रस परिज्ञान तथा उचित रंगों के भेद की समझता समझी के पहल दोहे से ही परिभाषित होना लगती है। इस दोहे में नायिका की घोभा घोषण और व्यंजना को उधार कर सामन रगना ही कवि का मुख्य प्रयोजन है। इसी तरह कई रंगों के भेद से बामुरी की हृदयगुपी घोभा है—

अधर घात हरि के परत पीठ कीटि पट खोति ।

हरित बॉस की बॉसुरी हृदयपत्रुष कवि होति ॥

वयस्यि की वयस्या की बिहारी ने धूप-धोह के रस में देखा है—

सूरी न खिसुता की मजक, कलकस्यो जीवन भंग ।

शीपति देह दुहुन मिथि, विपत वाकता रंग ॥

पूय-झाह के रंग-संवेत से बय-सन्धि की सोमा कितनी भावपूर्ण हो गई है ।

बिरोधी रंगों की योजना से भावार्थक चित्रों के उदेहने का प्रयास पूरे बिरोधी बर्ण-बोजवा ऐतिहास में कम मिलेगा किन्तु बिहारी ने इस रंग से भी नायिका की छवि का यावपूर्ण प्रकट किया है—

सन्धो बूझीको मुकससै, लीखे भीर भीर ।

मभी कलानिधि मजमसै, कलिको के नीर ॥

×

×

×

सोच सुदी सो बयमरी रँग रँग जीवन जोति ।

सुरैय कसुमी चूरी सुरैय देह दुति होति ॥

प्रथम दोहे में नीले और स्वेत रंग का बिरोध है और दूसरे में पीम और लाल का । एक में उच्छ्विपया-वस्तुत्प्रेक्षा और दूसरे में पूर्वाभंकार द्वारा चित्र को कूब घन्धी तरह निकार दिया गया है । पहले में स्थावायक पंख मुख्य है दूसरे में संपूर्ण भग की काति । इस तरह नायिका की अगर-मबर करती हुई भव ब्योति उससे सम्पूर्ण सौन्दर्य का प्रतिभासित कर जाती है ।

वही केवल कमलार प्रवर्धन की दृष्टि से बिहारी ने रंगों का प्रयोग किया है वही चित्र काव्योत्कर्षसम नहीं बन पड़े हैं—

जदित भीजमधि जगमगति छीक सुहाई नाँक ।

मभी जल-वपकजली बसि रसु खेतु मिसाँक ॥

नायिका की सोमायुक्त नाँक में लीलम-बड़ी छीक अवमगा रही है मानो भीरा निर्वर्षक भाव से जंघे की कमी पर बैठे रहने लगा है । इसमें मील-पीत रंगों के बिरोध से नायिका की सोमा वर्णित है । पर इससे कोई भावचित्र नहीं समझ पाता ।

वर्ण-परिवर्तन मन-स्थितियों का प्रकाशक सहज काविक व्यापार है । किसी मर्मस्पर्धी वाक्य बटना का प्रभाव हमारे ऊपर ऐसा पड़ता है कि उससे

बेहने का रंग उत्काश बढ़न जाता है । कभी वह

वर्ण-परिवर्तन

लाल हो जाता है तो कभी पीला कभी सफ़र हो

जाता है तो कभी काला । यह परिवर्तन इतना सहज

और प्राकटिक होता है कि उससे बटना-बिछप का संभव जाह सेने में कोई

बट्टिआई नहीं पड़नी। मानसिक व्यापारों का शरीर से गहरा संबंध है। मानसिक व्यापार शरीर पर सहरे प्रभाव डोढ़ जात हैं। प्रम-प्रमर्गों में जो रंग घाता है वह भाव हाता है। इस लताई की लता अनुभावों के धनधन होनी चाहिए। पश्चिम के कवियों ने सहरे की लता जग्य-जग्य की प्रकाश वर्णन किया है। रीति-रिवाज कवि प्राम गिने-गिनाए अनुभाव का अनुदिश बचकर समाप्त रहे। फिर भी उनमें वर्णपरिवर्तन के कुछ अर्थ उदाहरण मिल जात हैं।

बिहारी की नायिका का वन-परिवर्तन बतिए—

पहिरत हौं गोरे गरें, वों रौरी दुति लाव ।

सबौ पामि पुककित आई, सीकमिरी की लाव ॥

नायक ने पीपपी की माया मारी हाथ नायिका के पाव मारी है। मारी नायिका की माया पहना कर आई है और वह नायक ने नायिका की दात का बगम करती है। गारे मने में माया पहनने की वह लज्जा में मान हो गई। यह लताई उसकी प्रेमानुभूति की टोक है।

मग्ना के बाग्य मान होत का एव अन्वय सुन्दर विन बोलिए—

अ्यों अ्यों परसत छाछ ठव, त्यों त्यों राखत माव ।

नवध बहू हा छावतें, इन्द्र बहू सी होव ॥

—महिला

नायिका लताई है। नायक अ्यों-अ्यों उसका शरीर का रंग बनना जाता है तथा-तथा वह गहुरिज होती जाता है। वह हा छोटे लता के बाग्य ईद बघ व मदुस बन जाती है। इन्द्र-बहू का पू दीवारि वि वह पुर्न-मुर्न गई। उगता मान रंग नायिका की लता को प्रकाश करने में पून समय है। इन्द्र बहू इन्द्र बलुन उभयतिन विन दोबना के धनधन जाता है। इसके माध्यम से लता के समस्त आधार विन हो उठत है।

शरीर के रंग (चोरा) ने नायिका की माया का रंग बन गया है। यह अनापनीकता होत के बाग्य उभ इन्द्रा पता लगी जाता। इस वर्ण परिवर्तन का अर्थ अन्वयान्वित विन बेपी प्रवीन में लीका है—

कबलाई गूँधि बसा की सी में गहमीतिन की बहुरी अति छाव ।

आई कहीं है इहाँ दुखराव की, सीग गई अनुना लट बाव ॥

पदात उतारी ही 'बेनी घबीन' हँसी सुनि बैनब मैव रसाखा ।

बामल ना भंग की बदली, सब सो बदली बदली कही माखा ॥

नायिका के गले में जो गजमोतियों की मासा पड़ी थी उसका रंग बदल गया है। इस पर वह बेहद हैरान है—बाबा की धपक है कि मीने घमी कम ही तो गजमोतियों की एक सुन्दर मासा पड़नी थी किन्तु यह पुनराज की मासा कहीं से आ गई? कहीं यमुना-गुट पर स्नान करते समय किसी की मासा से यह बदल तो नहीं गई। उस बेचारी मुग्धा को क्या पठा कि घटीर की पीछाघ घाना के कारण गजमुताप्यों की बसेत मासा का रंग कुछ इस प्रकार बदल गया है कि उसमें पुष्पराल मयियों की माला की छाति होती है।

बिहारी के उपर्युक्त दोहे में कोई बूढ़ी नायक से नायिका की प्रेमानुमूर्ति का चित्र खींचकर नायक के मन की ललक को घोर भी अधिक बढ़ा देने का उपक्रम कर रही है। मतिराम के दोहे में नायिका की विशेष परिस्थिति में आलकर उसे छुई-मुई होती हुई दिखाने का अभिप्राय उसके प्रति नायक के आकर्षण को घोर भी तीव्र बना देना है। बेनी घबीन का बर्ण-परिवर्तन द्वारा नायिका के सौन्दर्य अवन का प्रयास उससे भिन्न नहीं है। सभी बर्ण-योजनाओं द्वारा नायिकाओं के ऐश्वर्य-शील आकर्षक और सम्भाव्य सौन्दर्य को प्रस्तुत किया गया है जो एक घोर साहित्यिक परंपरा से अनुमोदित या तो बूढ़ी घोर लक्ष्मीन सामंतीय परंपरा से सम्बन्धित।

पश्चिमी साहित्यालोचन में उपलब्ध चित्र-योजना (Imagery) की काफी खोज हुई है। इसके सम्बन्ध में कई वैज्ञानिक प्रयोगों का प्रचयन किया गया तथा कतिपय कवि एवं नाटककारों की व्यावहारिक उपलब्ध चित्र-योजना आलोचना भी की गई। कवियों की अनुसृत्यात्मक गहराई की परख के लिए उपलब्ध चित्र-योजना का विवर्तन आवश्यक है।

उपलब्ध चित्र योजना आर्गुमकारिक (Figurative) होती है। पश्चिमी विचारकों ने इसके लिए शब्द को आत्यधिक महत्त्व दिया है।^१ शब्द के रूप

^१—Metaphors belong to effects of style for which the common language of literary criticism reserves the term Imagery and they are of an importance for poetry that one can scarcely overestimate

म लागू एवं अग्रस्तुनों में जो स्पष्टता अविज्ञता और धर्म-विचार दिखाई पड़ता है वह धर्म प्रचार म लागू एवं अग्रस्तुनों में नहीं। जहाँ तक साम्य-मन मोक्षार्थ का प्रश्न है धर्म धर्मचारा के साम्य में लागू एवं अग्रस्तुन भी अपनी जगह बिना उपयोगिता रखते हैं। पर नुमनात्मक दृष्टि में विचार करने पर स्पष्ट ही जो निजी विचारणाएँ हैं उनकी ओर न ध्यान नहीं मूँहो जा सकता। उनका धार्मिक धर्मचारी म धर्म की एक स्पष्ट सीमा होती है पर स्पष्ट में धर्म की सीमा बिना हान के साध-साध कभी-कभी प्रतीतिमक भी हो सकती है। उनका और स्पष्ट व एक-एक उदाहरण नीचे—'उसका मुक्त आत्मा के समान मुन्दर है (उपमा) 'बहु शक्ति है (स्पष्ट) उनका म मुक्त व मित्र न आया गया अग्रस्तुन है। इस अग्रस्तुन द्वारा साध मोक्ष की अभिव्यक्ति हो पाती है। किन्तु स्पष्ट के उदाहरण में धर्म की सीमा निर्विज्ञता धर्मचारा अविज्ञता धार्मिक धर्मक पुष्पा का समर्थन होगा जा सकता है। उनका म जो अग्रस्तुन ल आया जाता है उसका धर्म सीमा और अग्रस्तुन अग्रस्तुन का व्यापक होता है। इस अग्रस्तुन के धर्मचारा धर्मों में हम पूरा परिचित रहते हैं इसका सामान्यतया साध में स्मृति म धर्म में अविज्ञता अविज्ञ धर्म धर्म प्रकाशित हो उठता है।

स्पष्ट मुख्यतः दो भाग करता है। एक तो वह धर्मचारी की ऐतिहासिकता (sensational experience) का आगम करता है दूसरे एक विचार को व्यापित करता है। अग्रस्तुन अभिव्यक्ति का अग्रस्तुन का धर्म अग्रस्तुन धर्मों की विचार। का ऐतिहासिकता की सीमा में आने वाला अग्रस्तुनों में संबद्ध करता। इसका धर्म ही वह प्रतीति की सीमा का भी व्यापक रहता रहता है। धर्म धर्मचारी की धर्मता यह अविज्ञता धर्मचारी का प्रकाश है।

साध्यात्मक समुदाय के लिए साध्यात्मक है कि इसका जितना जो अग्रस्तुन धर्म जितना धर्म उनका समुदाय परिचित प्रकाश में हो गया के पाठकों की अविज्ञताओं को आलोचित करने में पुष्पा समर्थ है। सीमा के एक उदाहरण (proportional) धर्म अविज्ञता धर्मों में। वह उसकी पुष्पा धर्मता हममें में किसी एक में न होकर उनका समुदायों में निहित है।

किन्तु जहाँ पर वह स्पष्ट करना होगा वह धर्म कि धर्मचारा धर्म सामान्यतः समुदाय में धर्म धर्म धर्म है। सामान्य में समुदाय धर्म साध म

होकर रूपकात्मक (Metaphorical) होता है। यह संघर्षों में प्रतीकत्व तथा संघर्षों में संवेदनात्मक होता है। इसमें पञ्चाक्षर विधेय का उठना महत्त्व नहीं है जितना उसके द्वारा प्राप्तिभूत संवेदना का।

महाँ यह प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त अप्रस्तुतों को ही संमूर्तनकम क्यों माना जाय ? उपमा-उत्प्रेक्षागत अप्रस्तुत भी तो संमूर्तन प्रस्तुत करते हैं और वे पर्याप्त रस-क्षम भी होते हैं। यह कहना कि प्रतीकत्व प्रयुक्त अप्रस्तुत सर्वाधिक काव्योपम होते हैं बहुत कुछ ठीक है किन्तु यह कि वे ही सच्चे काव्य की कसौटी हैं सब का आमक है। विशेष स्थिति (circumstance) और परिस्थिति (circumstance) जस्य काव्यात्मक स्वयं बिना किसी अप्रस्तुत-विधान के भी रसोद्बोधन करते हैं। एक प्रतीकत्व व्यबहृत अप्रस्तुत (इमेजरी) को उल्लेख काव्य की कसौटी क्यों स्वीकार किया जाय ? योरोप में जिस समूहगत विश्व वा इमेजरी पर बहुत जोर दिया गया है उसका समीक्षण हमारे यहाँ के साधुसंभूतक धर्मकारों ने कर लिया था मकता है। इस लिए उपलब्ध विश्व-योजना का पृथक् विचार न करके उस धर्मकारों के भीतर बृहत् कर लेना धीरचित्त-पूज मासूम पकता है।

संस्कृत-प्रालंकारिकों ने रस को काव्य की धारणा माना है काव्य के लेख उपकरण इसी के पोषक हैं। शब्दी ने धर्मकार को काव्य का सोमाकरधम माना है। धर्मकार का कर्मार्थ भी यही धर्मित करता है। धामन का कथन 'सौन्दर्यमर्लकार, विधेय महत्त्व रखता है। धर्मकार ही सौन्दर्य है का तात्पर्य यही है जो परिधम के सौन्दर्य धास्त्रियों का। वे भावानुभूति और धर्मिधमिध में मेव नहीं करते। धामन का धर्मकार रूप का बोधक है और सौन्दर्य भावानुभूति का।

ऐसी स्थिति में धर्मकार-योजना के लिए कोई प्रयास नहीं करना पकता। 'रससमाहितकता' कहि जब अपने मन को रस-केन्द्रित करता है तो धर्मकारों का धीरचित्तपूर्ण विध्यास अपने प्राप हो जाता है। धामनधर्मन ने कहा है—'तत् (रस) प्रकाशिता बाध्य विधेया एव रूपकावधोपलब्धता' ? रूपकावि धर्मकार रस के प्रकाशक हैं। यह तभी सम्भव है जब वे र्गीमूल (structural) रूप में प्रयुक्त हों। सम्भवतः इसी तथ्य को लक्ष्य करते हुए धर्मिन ने उन्हें 'रमाधित' और 'धर्मिधमननिर्धर्त्य' कहा है।

प्रयोग तीनो अक्षरों में दिया जा सकता है पर उसकी अर्थगत समनता में अन्तर भा जाता है।

पहले उपमागत कुछ अक्षरानुओं के उदाहरण देखिए—

- (१) बहबहाति तन तरबई अबि लुगि लौं बकि आप ।
- (२) कटि सी कसकति दिनें बई ब्योली भीह ।
- (३) बाही तन उरराति बह बिबलनुमा लौं बीहि ।
- (४) सटपटाति सी ससिमुखी मुख पूँवर पर हॉकि ।
पाबक मूर सी भमाकि कै गई भोले भॉकि ॥
- (५) बीचोई मोची बिपट लीहि कुहरी लौं बीरि ।
- (६) कौहर सी पहीन की बाकी बिरखि सुधाष ।
- (७) सहज सेत पचतोरिया पहिरें अति बुरि होति ।
जस साहर के दीप लौं जगमगाति तन भोति ॥
- (८) जाके तन की बूँद रिग जोमूह झौंह सी होति ।
- (९) हरि-बुरि जक जक से परो तबठैं दिन बिधुरें न ।
भरत भरत बूँद ठाठ बूँद भरी लौं बैन ॥
- (१०) बाह ब्योली तिननु में बीटी बाहु बिषाम ।
भरगट ही परमूस सी परगट परे बजाम ॥
- (११) जिस दिव झाड़ी सी किति बाड़ी गाड़ी पार ।
- (१२) बारि सखोली सौंखी नागिन लौं बसि आप ।
- (१३) नैह बजामत सीह लौं बिरखि निसा सी नारि ।

उपर्युक्त सभी अक्षरानुओं में से अधिकतर गए हैं। इनके अर्थगत के कारण कोई बाहे तो इन्हें जाना कर सकता है। पर ताजगी अर्थ-करण की निश्चयता है वैचित्र्य की नहीं। इतर-इतर की पुनर्गई हुई अक्षरानु वस्तुओं में एक अजनबीपन (strangeness) पाया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि वे ताजगी पूरा भी हों। यहाँ पर कवि की दृष्टि अजनबीपन पर ही अधिक टिकी हुई है।

तात्पर्यसार से जूना होती हुई नायिका थीर भगी क लफ जाने में जो अम-साम्य है वह स्वर ही कहा जायगा। फिर भी इससे एक वैचित्र्य

विश्व उपस्थापित हो जाता है। दूसरे उदाहरण का अग्रस्तुत कोई भविष्यतात्मक विश्व नहीं निमित्त बन पाता। १ २, ११ १२ १३ का अग्रस्तुत रागबाधायक क्षमता से मंच का रिक्त है। विश्वमनुमा और 'बुद्धि' धीन के बिना पक्ष का सादृश्य प्रस्तुत करने के बड़े बचतात्मक है। वास्तविक नहीं। मान-बचाने वाला व्यवसायी (शर्मा) जो अनसुन घूमना फिरता है वह माटी पीर में स्थापित नायिका का एण्डिय विश्व कम उमाड़ सकता है। अग्रस्तुत करत उसका घूमना स्थापित बन पाता है। गान्धी पीर का चित्रित करने की क्षमता उसमें नहीं। यही पर ता प्रस्तुत और अग्रस्तुत का कोई मानमित्र सम्बन्ध स्थापन भी नहीं हो पाता। एक ही दोष में कई समकालीन के निर्वाह की स्पृहा अग्रस्तुतों की विश्व-विधायिनी शक्ति को बीजक कर रही है। वहाँ भी द और वहाँ स्नेह, वहाँ निम्न वहाँ शरीर—इनमें ता कोई सादृश्य ही नहीं है।

चौथे मानचित्र और नवें उदाहरण का अग्रस्तुत अपनी रागबाधायक क्षमता के कारण वास्तविक विश्व निमित्त बनता है। अन्तर्गत म नायिका का भौतिक बर म्भ बना जाता अन्ति की लपट का मान्य पक्ष। इस अग्रस्तुत में रूप कम और प्रभाव नीला का साम्य है। इस लिए यह अन्तर्गत उदाहरण विश्व बन पड़ा है। पीताम्ब नायिका का रूप मास्टर की एक क्षमता को उमाड़न में 'पावर-भर' आस्थापित रूप में समर्थ है। आय की लपट का मय है पावर-वर्ती व्यक्ति को परिणत कर देना। नायिका का अर्चना नायक का विश्व-व्यवस्था में पूष बना देता है। यह अग्रस्तुत नायिका की रूप-वेनता को पाठ्य के मन में अन्तर्गति करके उमाड़ ही नहीं देना बल्कि उम्मे भी रागानुसृत कर देता है। पीनवर्ती नायिका और पावर-भर का साम्य प्रस्तुत करत समय बरि 'रसममाहित-बन' बना जा सकता है। जम-बाधर का रूप भी स्वत माटी के भीतर से भीवती हुई नायिका की कपई सम-उद्योगिनी रागात्मक बनना अन्तर्गति गच्छ चित्रित करना है। रहूँट पटी करने पूर्व अंश में समर्थ अग्रस्तुत है।

अन्तर्गत अग्रस्तुतों के चुनाव और मध्यम में बिहारी मय में अधिक समर्थ सिद्ध हुए हैं—

- (१) बर बागति लव सुखक छदि जोवन आयिछ जीर ।
पति बदि ते बदि बदि रकम, करी धीर की धीर ॥
- (२) चौदा घोंसु हँस, करी मोहर कपरी सज्ज ।
कोने बरन निमूर, दग मलय कोरे रहत ॥

- (१) बेई गहि गाईं परी, उपठको हार हिमि न ।
 आम्हो मीरि मरंग मनु मारी गुरेरन मीन ॥
- (४) भोगस बिनु सुरंग मुख सति केसर आइ गुन ।
 एक पारी छदि छांग, रसमय किन कोकन बगत ॥

ये समस्त उदाहरण पांडित्य-प्रदर्शन के चोकर हैं । इनके व्यस्तुत होने में यह है कि उन पर टिप्पणी आवश्यक है । इस व्यस्तुता की व्याख्या करने की आवश्यकता है ।

उल्लेखित व्यस्तुत कवि-कल्पित होने के कारण अधिक सामान्य होते हैं पर उनकी सिद्धता इसी में है कि वे बराबर राय बोधायक हों । यह व्यस्तुत रीति-कवियों का बड़ा ही लाड़ला व्यस्तुत रहा है क्योंकि इसके माध्यम से नायक-नायिका के स्वभाव की संभावना में उन्हें पर्याप्त पूर्ण मिल जाती है । इसका व्यस्तुत लोक-व्यस्तुत होता है । लोक-व्यस्तुत होने पर यह उपमा के व्यस्तुत या व्यस्तुत । लोक-व्यस्तुत उपमा का सामान्य होता सामान्य है । पर केवल लोक-व्यस्तुत होने के कारण कोई व्यस्तुत व्यस्तुत हो या न हो आवश्यक नहीं है । उनसे उस पहेलीपरक हो जाने का कठरा बड़ जाता है । पहले बिहारी की इस तरह की उल्लेखार्थ देखिए—

- (१) आल-आल बेईदप छुटे बार बनि देत ।
 गाछी राहु सति आहु करि मनु सति घर समेत ॥
- (२) भीको कसल कसल पर भीको बठित बराब ।
 कबिहि बड़ावत रकि मको सति मकल में थाप ॥
- (३) छिप-मुख कछि हरीत-बरी, बेई कनें विनोद ।
 सुत सनैह मारी किन्ही, बिनु पूरन मुख मोद ॥

पहले दोहे में राहु का सूर्य और बगमा को एक साथ ही घर केना लोक में व्यस्तुत है । पर इसके माध्यम के बात बिंदी और सम्पुक्त केवचित्त का कोई बिब नहीं व्यस्तुत हो पाता । वहीं बात छुटरे और तीसरे दोहे की उल्लेखार्थों के संबंध में भी कही जा सकती है । व्योतिष के सामान्य व्यस्तुत सामान्य जीवन से व्यस्तुत होने के कारण पहेली बन जाते हैं ।

किन्तु बिहारी की बहुत सी उल्लेखार्थ ऐसी भी हैं जो काम के व्यस्तुत मतारम बिब भी व्यस्तुत करती हैं । कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

- (१) पग पग मग अगमन परत करन अटन तुति मूखि ।
 डीर डीर कसिपत उठे सुपहरिया से कूखि ॥
- (२) बरी कोर मोरें बरन बड़ी लरी सुवि देसु ।
 कसति मनी बिठुरी किन्नु सगह मति परिबेसु ॥
- (३) सोहत ओड़े प्रीत पद श्याम सखोन गाठ ।
 मनी नील मखि सीक पर अतए परधी प्रभाव ॥

सुपहरिया के कूल का फूलना सोक-सिद्ध है पर डीर-डीर पर उसका फूल उठना सोक-प्रसिद्ध माना जा सकता है । यहाँ पर जो धर्म-साम्प्रदाय प्रस्तुत किया गया है वह पाठकों की रागोत्तेजना में पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है । बिजली के परिप्रेषण से अभिप्रेषित घरक-बन्धु सोक-सिद्ध नहीं है इसलिए यह उत्प्रेषणवत् प्रस्तुत है । यह कवि-व्यक्ति प्रस्तुत करीबार साड़ी में घोषित नायिका की मुख-खोमा को इस संघ से घटित करना है कि उसने पाठकों की रूप-वेष्टना तीव्रतर हो उठती है ।

इनके प्रतिरिक्त कवियों ने इस माहि मपाकर भी उत्प्रेषण की है, जैसे—

बनबसात बबल बपन सुन भूषर पद अथ ।
 मानहु सुर धरिता बिसल जब उचरत पुग मीन ॥

पर बना के बिमल जन में सुपमीन का उद्गता सोक-सिद्ध है । इसलिए सही अर्थ में इस उत्प्रेषण का विषय नहीं माना जा सकता । यों अपने आपमें भी यह प्रस्तुत कोई पान महेन्द्रनात्मक बिज नहीं प्रस्तुत करता । कामिनाम का एक बिज देगाए दिनमें रातिन आना का धनिाव महेन्द्रनात्मक रूप प्रकित किया गया है—

कदासाहस्रमरमकई विजस्वेदगुण

प्रत्यादेष्टादपि च मनुजो विस्मृतभूषिकामम् ।

स्वप्नासन्ने नवनमुपरिणमिद् शंके मृगावपा

मीनबोभाबज्जकुलवध्री तुष्टामेप्सवीति ॥

‘हाय मित जब ये बिलारे बापों के धन्य कटासबासे धनमात्रे नयन ऊपर की ओर कड़कने तो सग नीमकमल की मोहिनी गोभा धारण करने जो बबल मज्जतिरा के ऊपर में चढ़ हो उठता है । जब मैं मीन-मीन से

बहुत बने कुबसय (नीसकमल) की शोभा बारन करनेबाने नबनों की कल्पना करता हूँ तो भी मैं अजब कबोत अनुभव करता हूँ ।^१

इस प्रप्रस्तुत की बिब-निर्माण-शमता इस बात पर निभर है कि वह निराली गहरी संवेदना जागृत कर सका है। जब प्रप्रस्तुतों के मूल में मूढ़ संवेग (Complex emotions) रहते हैं तो वे बिब-अव्यवस्था को व्यापक और गहरा बना देते हैं।

इसके अन्तर्गत विरोधाभास विभावना विशेषांति अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की गणना की जाती है। विरोधाभास में विरोध वास्तविक न होकर प्रामाण्य मान होता है। कारण के अभाव में कार्यो-

विरोध मूलक स्वप्ति का बलन विभावना है। विशेषांति विभावना का बलना होता है अर्थात् वही कारण के बलना होने पर भी कार्य नहीं हो पाता। अतिशयोक्ति काव्य-कारण-विरोधमूलक अलंकार है—इसमें कारण नहीं होता है और कार्य नहीं। अतिशयोक्ति भी मूलतः विरोधमूलक अलंकार ही है।

जब 'सतसई' में प्रयुक्त कुछ उदाहरणों की परीक्षा कीजिए—

- (१) लंछी बाह कबिच रस सरस राग रति रंग ।
अवधूने बूरे, तिरे के बूरे सब धंग ॥
- (२) कहि रति मुख कनिर्बि गारे कली कलीही भीदि ।
बुझत न सी भव बैधि रही बई अमलुकी पीदि ॥
- (३) बा अगुवापी बिच की, पति समुदै बहि कोइ ।
जो ली बूई लाम रंग ली ली अगुवा हीइ ॥
(विरोधाभास)

- (४) रस सिंगार अजब किबै अजब अजब बैन ।
अजब रजल हू दिना अजब अजब बैन ॥
- (५) अंग-अंग रग अगमरी हीपसिखा सी रह ।
दिना बड़ाये हू रही बड़ी उबेरी रोह ॥

१—बा बिहारी प्रसाद 'बिहारी प्रियकर' पद पुष्पाजी कथा १ पृ. १२१ १२२ के अन्तर्गत।

(९) सतर भीड़ कटे कचन करत कटिन मन भीड़ि ।
कहा करी है जाति हरि हेरि हँसीही कीड़ि ॥

(विमादना)

(१०) कइपि कवापनि कीउनी कइति कहूँ दिस दीन ।
तऊ न दुँदित दुहुन के हँसी रसीछे मैन व

(११) मिसि रीपिबारी भीकपर पहिरि-बली पिप तोह ।
कड़ी हुराई कभी हुरे, रीप-सिखा सी देह ॥
बाध तुम्हारे बिहारी की अगनि अमूप अपार ।
सारी बरसे भीरूँ ममूँ मिटे न मर ॥

(विशेषोक्ति)

(१२) एग डरफत हूय कुटुम, छरात कुर-बित प्रीति ।
परति गॉठि हुराव दिउँ रई नइ कह रीति ॥

(१३) पिरके बाद बसोड एग कर पिचकी कइ ओर ।
राचन रँग छाकी यई बिच तिष ओचन कोर ॥

(असंगति)

(१४) मुहुति हुराई हुराति कहि प्रगट करति रति रूप ।
छुरे पीक छीरे कड़ी काकी अपर अमूप ॥

(अतिशयोक्ति)

कहना न होमा कि उपरिउद्धृत उदाहरणों में छ अपिवाग बहुत ही
मानिक और भावपूर्ण हैं। वास्तव में यही बिहारी का प्रधान क्षेत्र भी माना
जा सकता है। इन धर्मकारों का भी मुख्य उद्देश्य है भाव या हम का
उत्कारण होना। कमन्धारपूर्वता के साथ-साथ इनका 'रमाशिल्प' होना भी
आवश्यक है। इनमें बँदग्य उस भीमा तक नहीं पहुँच पाया है जहाँ मन्दिर-
रचना में उसका साथ पूरा जाता है। प्रत्येक धर्मधार प्रत्येक मंदिर में
धौचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता। उपमा और रूपक के प्रयोग में बिहारी
को प्रायः तकलता नहीं मिल पाई है किन्तु विरोधपूर्ण धर्मधारों में उन्होंने
वर्णन कुशलता का परिचय दिया है। बिहारी अपनी मजबूती के लिए प्रसिद्ध
है। यह मजबूती गद्यों के प्रयोग, वाक्य तथा धर्मधार-रचना में लब्ध
नहीं है। उपमा और रूपक का सम्बन्ध रचना की जिस गहराई से
बहु बिहारी में नहीं है। इसलिए कमन्धार के अन्तर में जैसे रहने के

कारण उनके प्रयोग में वे संवेदना से प्रायः अस्पृष्ट हो गए हैं। विरोध-मूलक अर्थकारों में उनको अपनी स्वाभाविक क्षीण भिन्न गया।

शोक-रसना की सीमा में न जाने काली जिन अन्धकारों का आकार विहारी ने अपनी व्यक्तियों में मिला है वे एकदम सवेदना-विहीन हैं। कहीं-कहीं तो व्यक्तित्व-व्यक्तियों की वे एकदम उपहासस्पद हो जाती हैं। रीतिकाल के चरम सीमा परने कवियों पर प्यारी कविताओं का प्रभाव पड़ा है—उनकी प्रशंसाओं और बुराईयों दोनों का। वे व्यक्तियों उनके बुरे पक्ष 'मुवासा' से आत्यंतिक रूप से प्रभावित हैं।

उदाहरणार्थ—

- (१) सरि बतवधि सिस्तिर रिदु सहि विरहिनि ठब ठाप ।
बसिबे की प्रीतम दिबनु परो परीसिब पाय ॥
- (२) आये दी आये बसब आये हू की राति ।
साहस कबै बनेह पस बखी सबै रिग जाति ॥
- (३) भीचाई सीसी मु बखि विरह बरनि बिबलात ।
बिबही सुख गुलाब नी बीटी हूँ ब गात ॥

(अर्थकारों की भाँति यदि अस्वाभाविक रूप पोषक होकर आते हैं तो उनकी उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं है) का हजारीप्रसार विवेकी के चर्यों में 'अस्तु' अस्वाभाविक और अर्थहीन होने की वृत्ति के अस्पृष्ट आचर भी बन सकते हैं और बाधक भी हो सकते हैं। परन्तु जिस काव्य में केवल अस्वाभाविक ही अंगार उत्पन्न करता है अर्थ का भार कम होता है वह एक प्रकार की अस्वाभाविक-अनुसृष्टिजनक भावों का कम्पन उत्पन्न करता है। न तो वह संवेदना की प्रभाव पति उत्पन्न कर पाता है। न अर्थ-व्यपत्ति से सम्पूर्ण रूप से विच्छेद ही कर पाता है। उसका सम्बन्ध बरकरार रहता है और आत्मा का सम्बन्ध स्थापित करते रहते हैं और स्वर के स्वरूप प्रवाह में आवा उत्पन्न करते रहते हैं। अर्थ नष्ट-हीन अस्वाभाविक न तो काव्य की गुरु अनुसृष्टि ही पैदा करते हैं न संवेदना का प्रवाह ही। वे दोनों के केवल बटिया प्रभाव ही उत्पन्न कर सकते हैं। रीतिकाल के कवियों में अस्वाभाविक के प्रयोग बहुत हैं पर अधिकतर वे काव्य के बटिया प्रभाव की उत्पन्न करके रह जाते हैं। अर्थ की

बाधगता ने उसका जितना सम्बन्ध होता है उतना समझीयता सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त नहीं होता^१।

८ (अद्वैतवादी में मुख्यतः अनुशासक शैली और समक के प्रभाव बहुत हुए हैं।) रीतिरस का कोई ऐसा कवि न मिलेगा जो अनुशासक के समन्वय से घिरा हुआ न हो। कभी-कभी तो यह दो-बो तीन-तीन चरणों तक चमत्कार होता है। अनुशासक का दर्शन न कोई संशय नहीं है। फिर भी रीति कवियों को हमारी बीड़ा कुछ ऐसी खिचकर प्रतीत हुई कि वह उनकी सीसी का घबराव बन गया। बिहारी के कुछ उदाहरण देखिए—

सहित समैह सकोच मुख स्नेह रूप समुच्चयि ।

× × × ×

हारि हार हरि हिन भई हीन बिहारी प्रिय ।

(उनके अधिराज्य दोहा में अनुशासक का समन्वय दिखाई देता है। पर इस चमत्कार के अन्य कवियों की तुलना में बिहारी में संभव और सम्पूर्ण अधिक दिखाई देता है।)

शैली में समन्वय का माप ही व्यवहार की उचित मात्रा में होता है। स्वामावाक्ति को छोड़कर यह अन्य व्यक्तिकारों का महाभारत होता है—स्वभाव-वृत्तानि सर्वांगु प्राप्ते बर्जितानु प्रियम् (बन्दी)। अनेकानु प्रिय का कहना है कि यह उपाय-वर्धन व्यक्तिकारों का उपायक सिद्ध होता है। काम के मतानुसार (संभव-वृत्तानि) शैली को व्यक्तिकारों का उपायक सिद्ध होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संभव पूर्ण रूप में प्रयुक्त होने पर यह व्यक्तिकारों का सौन्दर्य विषयक होता है। श्री यदि हममें माना था निकालने की चट्टा चमत्कारों बिहारी कर देती। बीचके मतानुसार व्यक्तिकारों और मानववाक्यों ने हमका व्यक्तिकार दुर्गमोद बिहारी है। हा राधकृष्ण ने बर्जितों काम के चट्टों के सम्बन्ध में बताया है कि चट्टा चमत्कार या चट्टों का बिहारी उनका निराला समन्वय था। कभी उनके द्वारा हम की बिहारी में सादृश्य का स्थापित कर पाने हैं और कभी कवियों की मौलिकता पर संशुभ हा जाते हैं और भाषा पर उनका व्यक्तिकार की दाव देने मकने हैं।^२

^१—हिन्दी साहित्य संस्कृत संस्कृत १० १११

^२—It became impossible for a letter-day scholar to write except in double entendre and if we take a work like Vedanta

(बिहारी ने वहाँ पर स्तव का प्रयोग किसी उपमा-गत अलंकार को पुष्ट करने के लिए किया है वहाँ पर तो वह उसका उपकारक सिद्ध हुआ है अन्यथा नहीं । कुछ उदाहरण देखिए—)

(१) अपि सुन्दर सुन्दर पुनि सगुनी दीपक देह ।
तक प्रकाश करै तिनी मरिषि मित्रो सबेह ॥

(२) पावस बात न जानियत तेजहि तनि सिचराव ।
बहि-बिबाई की बटौ, करो पूस-दिन-माव ॥ ✓

पहले उदाहरण में स्तव से पुष्ट रूपक है दूसरे में पूर्णोपमा । पहले में 'सुन्दर' और 'सुन्दर' बलकारक होने के साथ-साथ रूपक के निर्वाह में पूर्णोपमा देते हैं । दूसरे दोह के 'माव' को भी पूर्णोपमा का उपकारक कहा जायगा । अब अलंकार सजा करने वाले कुछ उदाहरण देखिए—

(१) बड़ी लक्ष्मी ही रही कृति सेवक एक धंग ।
बाक-बास बेसरी बड़ी, बसि मुकुटन के संग ॥ ✓

(२) कुँगा कोप तनि हँसनी करति लुबति जग बीव ।
पावस बात न गत यह लुग हूँ ग होव ॥

पहले उदाहरण के स्तव पर तो बिहारी की बालकारिका की बात ही जा सकती है । दूसरे उदाहरण में रंग का पद्यक वाक्य प्रस्तुत किया गया है ।

युक्त प्रायः प्रकृत-साध्य होने के कारण कवि को रस-समाहित नहीं रहने देता । अतएव रस में तो वह और भी अनुपयुक्त ठहरता है । पर (बिहारी ने इस अलंकार का भी प्रचुर प्रयोग किया है ।)

deskas Subhastanivi we can rarely find there a verse which has not got two meanings. Sometimes we are able to set up similarity between both the ideas and sometimes we are left to satisfy ourselves with the mere pleasure of originality and admire the author's command over the language

—Dr. Raghavan, Some Concepts of Alankaras PP 77

रस कविता का प्राण है और व्यसकार उसका पापक । व्यसकार का प्रयोजन भावानुभूति का सान्द्र बनाना है वहीं उसके काय की सीमा है । व्यसार्त्तकार हो जाहे व्यसर्त्तकार—दोनों साध्य हैं । काव्य-प्रक्रिया में वे सहज ही योग देते हैं इसीलिए उन्हें 'रसाक्षिप्त' और 'अपृथग्यत्ननिवर्त्य' कहा गया है । कवियों के रसोपासक होने का कारण बताते हुए महिममट्ट ने कहा है—

विभोत्कर्षोपकर्षाभ्यां स्वदन्तेभ्यां न जातुविद ।

तद्वर्चमेव कवयोऽर्थकारान्मधुपासते ॥

व्यञ्जना और सतसई

सत्य-शक्तियों में व्यञ्जना का बहुत ही अधिक महत्त्व है क्योंकि ध्वनि भी मूमाधार वही अभिन्न है। पहले वहन रस की प्रतिष्ठा दृश्यकाव्य में हुई और रस-सिद्धान्त वही तक सीमित रहा। नाटक का मुख्य उद्देश्य बिना बाधुनाब प्रादि के द्वारा मृगार-कृत्य रसादि की प्रतीति कथना वा। इसके लिए प्राक्कमक वा कि नाटक विस्तृति-सापेक्ष हो। प्रबंध-समन्वित काव्य-काव्य में भी बिनाबाधुनादि के द्वारा रस-प्रकृति उचय है परन्तु काव्य मुक्तकों में रस के सभी प्रकपनों का सम्मिश्रण सम्भव नहीं है। अतएव उन्हें काव्य के अन्तर्गत नहीं परिगणित किया जा सकता। ध्वनि-सिद्धान्त रस-सिद्धान्त का ही विस्तार है। काव्य काव्य में वही सिद्धान्त के द्वारा रस की प्रतिष्ठा हुई। वस्तुतः व्यञ्जनालोक के पूर्व रस और काव्य का समुचित संबंध-स्थापन नहीं हो पाना वा। ओचनकार ने ध्वनि को काव्य की व्याख्या माना। रस ध्वनित होता है इस बात को स्वीकार कर लेने पर अमलकार-अम मुक्तकों में भी रसाधिष्ठाति की स्थिति मान ली गई। तभी तो आनन्दवर्धन ने बोधना की कि अमरककबेरक स्तोक प्रवचन श्रवणसे।

ध्वनि का मुख्य प्रयोजन है—प्रतीयमान अथ प्रतीति और वह व्यञ्जना व्यापार द्वारा ही सम्भव है। दूसरे पद्यों में भी भी कहा जा सकता है कि

पहले उदाहरण के दोनों धर्म प्राकृतिक हैं और दूसरे उदाहरण का एक धर्म प्राकृतिक है दूसरा धर्म प्राकृतिक। स्वेच्छाकार में जहाँ कोमलता कमलार है वहाँ माधुरी व्यंग्यार्थों में व्यंग्य धर्म के कारण बाह्य धर्मिक भा गया है।

इस उदाहरण में कल्प धर्म प्राकृतिक धर्म ही व्यंग्य नहीं है बल्कि दोनों धर्मों में एकसूत्रता स्थापित करनेवाला 'उपमासकार' भी व्यंग्य है। यदि दोनों धर्म सर्वथा समझ होने लगे कवि की प्रतिभा घटित मानी जाती। संबंधस्थापनाय जिस उपमा का प्रयोग यहाँ करना पड़ रहा है उससे दोनों वाक्यार्थों में उपमासमोपमासमास स्थापित होता। उपमासमोपमासमास के कारण जिस बिनास की मृष्टि उल्लेख दोहों में की गई है वह समीपार्थप्रतिपादक हो गया है।

इन व्यंग्य का संबंध प्रयोजनवर्ती मध्या में है। इनमें प्रयोजन या फल की प्रतीति व्यंग्यता द्वारा मानी जाती है। मरकट छन्द के प्रथम में बरका का कोर-न-कोई प्रयोजन निहित रहता है। यह व्यंग्यार्थ प्रयोजन मरका व्यंग्य होता है। इस व्यंग्यार्थ की स्पष्टता-सम्पत्ति का आधार पर इनके दो भेद किए गए हैं—मृदु व्यंग्य और कूट व्यंग्य।

मृदु व्यंग्य में व्यंग्य स्पष्ट होता है। मर कूट व्यंग्य की धरेला इसका वाक्यात्मक स्वर नीचा होता है। कुछ उदाहरण नीचे—

- (१) किरत तु अरकठ अरवि-विभु रसिक, सु रस न, विवाह ।
- (२) मदन मदन के किरत की मदन छूटे, हरिदाह ।
- (३) मान विषा हिच में बस बल-रेखा-ससि भाव ।
मल्लो विचार्यो चाह यह हरि हर-रूप रसाव ॥

उपर्युक्त दोनों उदाहरण में विपरीत मरका में रसिक का धर्म धर्मिक और हरिदाह का धर्म धर्मिष्ठ मरक है। रसिक का मरकाय धर्मिक तथा हमारा 'प्रयोजन' का व्यंग्यार्थ रसिकता-मरकता का धर्मिष्ठ है।

मृदु व्यंग्य धरेला इन धर्मिक होने के कारण मृदु व्यंग्य धर्मिक व्यंग्य होती है—

- (१) सहस्रहाति तन तनई कवि की कवि जाह ॥
- (२) होमति मुनु करी कामका तुमहि मित्रन की भाव ।

सहस्रहाना तारम्य का बर्न नहीं है बल्कि हरे-मरे खेतों और हरी भरी क्यारियों का बर्न है। मूल्यांकन बाप से इसका अभ्यास हुआ नबनामिराम मरा-मुरा जीवन और प्रयोजन का व्यंग्यार्थ हुआ जीवन की संपूर्ण विशेषताओं की परकाष्ठा। दूसरे उदाहरण में 'होगति' कष्टातिशय का व्यंग्य है।

प्राचीं व्यंगना में व्यंगना धन का व्यापार है। कुछ विद्वानों के मतानुसार व्यंगना सर्वदा धन का व्यापार होती है धन का नहीं पर धनिकारियों की दृष्टि से यह सच बात है। प्राचीं व्यंगना में धन व्यंगी व्यंगना व्यंग्यार्थ का साधन है। यह धन जिससे व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है वाक्य भी हो सकता है सत्य तथा व्यंग्य भी। दूसरे स्थलों में यह भी कहा जा सकता है कि वाक्यार्थ सत्यार्थ और व्यंग्यार्थ तीनों धनों से व्यंग्य धन की प्रतीति होती है। इसके अनुसार प्राचीं व्यंगना के तीन भेद किए गए हैं—वाक्यसंभवा सत्यसंभवा और व्यंग्यसंभवा। इनके बहुत से उदाहरण सतसई में मिले हैं—
वाक्य संभवा—

(१) लंजीबाद कबिच रस सरस राग रति रंग ।

धन बूरे बूरे, तिर के बूरे सब धंग ॥

(२) नाम धरीक मियाधि कबिच कबिच कबिच-नुज ।

कसुबा-सीर तयाब—तब मिचित माबती तुज ॥

प्रथम दोहे में वाक्यार्थ परस्पर विरोधी बातें व्यक्त करता है। इसका व्यंग्यार्थ होता कि लंजीबाद प्रादि में आकंठ गम्य होने पर ही पूर्ण रसास्वादन होता है। दूसरे उदाहरण में व्यंग्य है नायिका के स्वर-बिहार का संकेत।

वाक्यसंभवा

कत सज्जकत, बिबरक चिरी रठिपीओरि तुगै न ।

कहा करी बी जाह ए कनी खगिहै पैव ॥

सत्यसंभवा प्राचींव्यंगना में तीन धनों की प्रतीति होती है। सज्जना मूसा शास्त्री व्यंगना में सत्यक सत्यार्थ व्यंग्य होता है पर सत्यसंभवा प्राचीं व्यंगना में सत्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। इस उदाहरण में वाक्यार्थ है 'सज्जकत क्यों होते हो निभकन फिर करो तुम्हें रती भर दोष नहीं है। यदि ये लकीहें तमन कही तय जाँव तो तुम क्या करो। सत्याब यह है—तुम स्वयं दोषी हो। न तो तुम्हें संकोच है और न डर। तुम न

बामो तो क्या तुम्हारी घाँघें तुम्हें घसीट में बाँध । इस सद्योर्ष वा व्यंग्यार्थ है कि तुम बहुत बड़े निर्लज्ज हो बेहया हो यदि तुम चाहो तो अपने स्वभाव को बदल सकते हो ।

व्यंग्यसंभवता

सतु सूर्यो, बंती बनी, कभी कई उबारि ।

हरी हरी बाहरि चरै घरि बाहरि मिय नारि ॥

इसमें बाहर की सपनता व्यंग्य है और उससे व्यंग्यार्थ निकलता है बहुत उपपन्न संश्लेषण ।

वाक्य सत्य और व्यंग्य दोनों में व्यंग्यार्थ-बोध की समता बचना बाढ़व्य काट्ट वाक्य वाक्य सत्य के साधिव्य व्यंग्यार्थ-बोध के प्रस्ताव देता कास तथा वेष्ट के वैशिष्ट्य से साधुर्भन होती है । पर व्यंग्यार्थ की समक उमी को मित सजनी है जो प्रतिभासपस हो ।

इसमें बचना के स्वभाव सादि की वैशिष्ट्यता जान लेने पर व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है । मुख्यार्थ बनू वैशिष्ट्य के संदर्भ में टीक-टीक नहीं बैठ बनू वैशिष्ट्य पाना । ऐसी स्थिति में उसने बचना की वैशिष्ट्यता के कारण व्यंग्य व्यर्थ की प्रतीति होती है—

कटक कटक कटक बनू कटक कटक कटक की कूँह ।

कटक कटक कटक कटक कटक कटक कटक कटक ॥

इस रोह में बनू-वैशिष्ट्य के कारण उसनी प्रेम-कीड़ा व्यंग्य है ।

वाक्य-वैशिष्ट्य में व्यंग्यार्थ की प्रतीति वा मुख्य भाषन वाक्यार्थ है ।

वाक्य-वैशिष्ट्य इसमें वाक्य भाषन है और व्यंग्य भाष्य—

काम करीक निवारिये कवित कवित कविर्भुज ।

कमुना तीर समाज तन मिकत माकली कुँज ॥

इसके वाक्य-वैशिष्ट्य में (इसमें देता और काम-वैशिष्ट्य भी है । 'कमुनातीर' देता-वैशिष्ट्य है और 'काम करीक निवारिये' में काम-वैशिष्ट्य है) वाक्य की रति-कीड़ा की अभिसाया व्यंग्य है ।

व्यापार की प्रतीति करने वाले साधनों में चेष्टा का विशेष महत्व है। अभिनय के प्रकरण में इन चेष्टाओं या भंगिमाओं का बहुत महत्व बताया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बिहार करने पर चेष्टा भाव-व्यंजना में चेष्टा का पर्याप्त योग मानना होया। वास्तव में चेष्टाएँ दो प्रकार की होती हैं—साधक और सिद्ध। जब नमी के बाणी के सहायक के रूप में व्यक्त होती है तो वे साधक कही जायगी। बात करते समय बाताँ में पूर्वता से घाने के लिए व्यक्ति हाथ धीरे मुख धाबि से अनेकानेक चेष्टाएँ करता है। वहाँ बाणी मुक्त होती है—कुछ ऐसे प्रसंग होते हैं वहाँ बाणी से काम नहीं लिया जा सकता क्योंकि सामाजिक विधि-नियम उनसे प्रतिबन्धित पड़ते हैं—वहाँ उनका स्थान चेष्टाएँ से लेती है। इनका सिद्ध चेष्टा का नाम दिया जा सकता है। ये चेष्टाएँ प्रायः मूर्खता की ओतक होती हैं। प्रेम-प्रसंगों में इन मूर्खता-मर्म चेष्टाओं का बितना महत्व थाका जाय बोझा है।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने की है कि ये चेष्टाएँ संयोगमूलक चेष्टाएँ हैं विमोह में इनका कोई महत्व नहीं है। विमोह की भाव-विज्ञान प्रवस्था में इस संकेत व्यापार का कोई स्थान नहीं है। बिहारी के बीबापरक सुचिन्कोन के कारण उनकी सतसई में चेष्टाओं के उदाहरण नये पड़े हैं।

कुछ उदाहरण देखिए—

- १ (१) बिबली बाबि बिबाह कर सिर रुकि सङ्कषि, समाहि ।
गली, गली की ओर के बली मली बिबि बाहि ॥
- (२) मीठि रीँचि बाँचि पड़ति मौरि मोरि, मुँह मोरि ।
नीति नीति मीतर गई, बीति बीति सी मोरि ॥
- (३) जलि गुहजन बिच कमल सीं सीस कुवाची स्पाम ।
हरि सबमुख करि धारसी दिऐं जगाई नाम ॥

तीसरे बोहे की रत्नाकरी टिप्पणी देखें—

[नायिका को] गुरुजनों के बीच में देखकर क्याम ने [अपना] सिर कमल से छुवाया (पाँच पङ्क्तियों की चेष्टा कर के निघने की प्रार्थना सूचित की)। नाम (नामा सर्वार्थ नायिका) ने [वह भाव समझ कर अपनी] धारसी हरि (सूर्य के सामने करके हृदय में लगा सी (धारसी में सूर्य का

प्रतिबिम्ब लहर कूब-जी पहाड़ों के बीच में समने में यह सूचित किया कि
सूर्य के घटनाक्रम में स्थिति पर सर्वांग राशि को निर्भर () ।

पर यदि इनका कार्य मान लिया जाय तो पहलियों का भी इसी की
शरीर में रहना होगा ।

बस्तु धर्मकार और रम की दृष्टि से ध्वजना के तीन भेद होते हैं—बस्तु
ध्वजना धर्मकार-ध्वजना और रम-ध्वजना । बस्तु और धर्मकार के लिए
ध्वजना हुआ धर्मकार नहीं है वे बाध्य भी होते हैं
ध्वजना के तीन भेद पर रम बाध्य ही होगा है बाध्य रूप में रम प्रतीति
ही ही नहीं सजती । बिहारी सतसई में तीनों तरह
की ध्वजनाएँ मिलनी हैं—

बस्तु-ध्वजना

हुंख मरनु लजि धरम की बलिष नरहिसोर ।

कृष्णति कभी गुनाह की चरकाहद बहूँ और ॥

धर्मिय पति से दो बस्तुओं की ध्वजना हो रही है एक तो पृथ्वी की
गुनाह की कभी की चरकाहद की और दूसरी प्रातः-नास की ।

धर्मकार-ध्वजना

तूँ रहि, हींही सखि, जली, बहि म जटा बहि, बाह ।

सकहिनु किनु ही लसि नई हीनतु भातु अकाख ॥

यही भाविमान धर्मकार ध्वजना है ।

रम-ध्वजना

अहाँ उहाँ टारी कबो रवाना भुमग सिरमोद ।

बिच हूँ बच किनु यदि रहतु रवाना अहाँ बह सीद ॥

‘अहाँ उहाँ गुजर गुप्ता के सिरोमणि रवाना (भी चरकाहद) को मर
हेगा वा वह ठीक जब तक उनको अनुपस्थिति में भी गुप्ता को रवाना पर
रखता है । भी चरक के संदर्भ में ध्यान बाल सभी रवाना धर्मों को धर्म में

के लिए पकड़ सेठे हैं। इस तरह स्मृति-संचारी व्यंग्य होगा है, रस स्मृति-संचारी से विप्रर्णस शृंगार की व्यंजना होती है।

व्यंजना के प्रत्येक तेषों और सहाहरणों की पर्यालोचना हमें यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि व्यंजना सर्वत्र उत्तम काव्य की शीतिका नहीं है। प्राचाओं ने इसी लिए उत्तमोत्तम उत्तम मध्यम और प्रथम काव्य-श्रेणियाँ मानी हैं। उत्तमोत्तम काव्य बही माना जायगा जिसमें रस-व्यक्ति के अधिक स्पष्ट चित्र हैं। इस दृष्टि से उत्तमों का अध्ययन रोचक विषय होगा।



काव्य की भाषा और मध्य की भाषा में अन्तर होता है क्योंकि दोनों की अभिव्यञ्जना-प्रणालियाँ में अन्तर होता है। काव्य की भाषा का प्रयोग मन की आवात्मकता पर आधारित है तो गद्य की भाषा मन की दूसरी स्थिति पर आधारित है। काव्यात्मक अभिव्यक्ति के समय मन की एकतामयता अत्यधिक वर्नीभूत रहती है और गद्यात्मक अभिव्यक्ति के अवसर पर वह प्रसरणशील दिखाई देती है। पहली अवस्था में मन को संतुष्टिदायक कहा जा सकता है तो दूसरी अवस्था में उसे विस्फोटक की समझी जानी है। रचना प्रक्रिया की अवधि में काव्यात्मक भाषा जोसाहज अधिक निवमानुबिनी और परवरायुक्त होती है। भाव-अंगुल होने के कारण काव्य-भाषा लोक-भाषा का अतिक्रमण कर जाती है। उसमें अर्थ का बचाव अधिक या जाता है। इसीलिए काव्य भाषा का अर्थ ए० रिचार्ड्स ने रादबोवात्मक (Emotive) कहा है।

गद्य का बाह्यारण्य उसका मंगीन समझी अर्थवत्ता तथा उसकी सांकेतिकता सब के लिए सब कुछ है। अंग्रेज के भाषाज्ञों ने लक्ष्यों को अविभाज्य और एक माना है। शब्दों के अनुर्वन (Associations) एक विषय प्रकार के आसुप्त बिंदु की समझ करते हैं जिसमें भावों और विचारों के समुच्चय में सहायता पहुँचती है। काव्यात्मक शब्दावली के लिए रचना ही

घनम् नहीं है बल्कि उसे मानसिक तारों को स्पन्दनपूर्ण भी बनाना पड़ता है। मेरी दृष्टि में इस तरह की सञ्ज्ञावली में व्यंग्य-शक्ति की निहिति आवश्यक है।

काव्यात्मक भाषा की अपनी एक लय और सञ्ज्ञावली होती है जो युग के अनुसृत्य परिवर्तित होती रहती है। तुमसी-मुर की बजभाषा की लय और रीतिकालीन कवियों की बजभाषा की लय में पर्याप्त अन्तर है। उसी प्रकार रीतिकालीन बजभाषा और भारतेन्दु-रत्नाकर की बजभाषा की लय में काफ़ी अन्तर था गया है। कभी-कभी एक ही युग के दो-कवियों की लय में बहुत पार्थक्य दिखाई देता है। उदाहरणार्थ भारतेन्दु और रत्नाकर की भाषाओं की सवात्मक मिश्रता देखी जा सकती है—एक की लय प्रायुक्तिक है तो दूसरे की व्यंग्यकाशीन। ऐसा व्यक्तिगत बिचारों के कारण होता है। यही बात शब्द (Idioms) के सम्बन्ध में भी लागू है। लय और शब्द का सम्बन्ध तत्कालीन जीवन से होता है। इस अर्थ में कोई काव्य अपने युग का प्रति-कल्प नहीं करता। अपने युग की सञ्ज्ञावली और लय से पूर्णतया सम्बन्ध न होने पर कोई काव्य युग का प्रतिनिधित्व कर पाने में सर्वथा असमर्थ होता है। नई कविता अपने भाव व रूप में युग जीवन को बह कराने में समर्थ नहीं हो पा रही है। इस दृष्टि से रीतिकाल का काव्य प्राथम्य कहा जा सकता है।

अब हम पहले इन दोनों दृष्टियों से बिहारी की भाषा पर विचार करेंगे। इसके अनन्तर भिन्न-भिन्न प्रकार की बोलियों तथा व्याकरणगत स्थिरता-अस्थिरता पर विचार करना अधिक संभव होगा क्योंकि काव्यभाषा के महत्त्व का आकलन इसी क्रम में करना अधिक मनोवैज्ञानिक है।

अगर इस बात का संकेत किया जा चुका है कि पद्य में ध्वनि-बोध का महत्त्व होता है तो काव्य में राग-बोध का। राग-बोधात्मक शब्दों का अर्थ अधिक उत्कर्षता और भाषागत अधिकार की भाँति भाषा की आत्मा करता है। राग-बोधात्मक होने के लिए आवश्यक है कि कवि की यह मान्यता हो कि प्रमुख शब्द अपने सर्व-र्थ में घोषितपूर्ण तथा व्यंग्यक है। व्यंग्य होने के लिए एक ही एक शब्द को अनुपूर्व-संबुद्ध होना चाहिए। और वह तभी सम्भव है जब उसे शब्द की आत्मा का पूर्ण ज्ञान हो। यहाँ कुछ उदाहरणों के माध्यम पर यह बीज पड़ेगा कि शब्दों का किन्ता महत्त्व ज्ञान बिहारी को था।)

शुद्ध शब्द का ही मीत्रिए । एक अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग बिहारी न किया है जिसकी दृष्टि-बीज बनने पर सफा है कि उन सबको न के ही शब्द सर्वाधिक उपयुक्त थे—

(१) माने मोहन-मोह की, माही करत कुपित ।

× × ×

(२) कच-चंगुली-बिज हीरे है, कितबहि मन्त्रकुमार ।

× × ×

(३) रतिपाशी, आशी भक्त, भाग धनमाली न ।

× × ×

(४) बरक-भरपी सटु मिथि गली घरक-भरक-वट माँह ।

× × ×

(५) केरि बरछरी कीरिबि सुरत सीधि धनस्यार ।

मोहन के मोहने में जो बलवार है वह शब्द नही । मोहन मोहनता का गुण से शब्द सत्य है इसलिए उसको चुन करवा अपेक्षातः अधिक कठिन है । मन्त्रकुमार में जो कुमारत्व है वह बिना जाने के प्रत्यक्ष में प्रत्यक्ष-मन्त्र से पूर्ण है । भक्तिभाव पर जो भाव बन गरीब-धन प्राप्त हुआ करता है, न धाकर बलमाली ही धन्य रति का पावन बन सक्ते हैं । घरक-बरक-वट के प्रत्यक्ष में कोई चुपचाप सट ही सुपछह बालिका का उद्धार करने में समय है । 'मनस्यार' शेषशेष व्याख्या की जाय नही करना ।

कही-कही बिहारी में इस धीबिध का निर्बाह नही हो पाया है, बल—

बीज मीति रहि है किनु अब देखिषी मुरारि ।

बीजे मोर्छी काहू के गीत गीतहि लारि ॥

यहाँ पर 'मुरारि' शब्द में लालने की धारणा स्पष्ट है । पर इस तरह का शब्द बिहारी में बहुत कम है ।

बिनु बिनु बचनु न हात इदि काछब-दग बाओर ।

मावबाज के घटपरा प, बागन के घोर ॥

यों इसमें पर बलवार ता है ही कि मावबाज घोर घोर का घमाव बाज घोर मोर हुए अनुप्रास का घन-रस बनने है । पर बलवार यों मावबाज घोर बाजों हुए का चित्त-चित्त शब्द बननी है । बिनु यदि यहाँ बचपु बी अरु घोर घोर का के शब्द पर बलवार रस से ता शब्द प्रयोग धनीचित्पूरे

हो जायगा क्योंकि जायते हुए व्यक्ति की बोरी तो की जा सकती है पर साथ-साथ व्यक्ति का मन चुराना बहुत ही कठिन है। सामान्य व्यक्ति का मनापहरण अनपूर्वक क्रिया जा सकती है जो जोर का नहीं बल्कि का काम है।

‘मोचन’ और ‘मोहन’ समानार्थी हैं। इन दोनों शब्दों का प्रयोग सतसई में हुआ है—पर मिम मिम संदमों में। ‘मोहन’ में जो ‘सावध्य’ भाव निहित है वह मोचन में नहीं।

शब्दों के इस वैशिष्ट्य और मौलिकता का विचार व्यंजना और शब्द-व्यक्ति के प्रयोग में किया जा चुका है। मुहावरों की चर्चा भी चलन से हो चुकी है। यहाँ पर उनका विष्टपेयन नहीं किया जायगा।

‘दास’ की परविधि धापा

‘मिच्छापीडास’ ने ‘काव्य-निर्णय’ में लिखा है—

माक ब्रजभाषा कबिर कई सुमति सब कोइ ।
मिछै संसृष्ट पारस्यो, पै अति प्रगट छ होइ ॥
बृज भागधी मिछे जमन, जाग जमन मापनि ।
सहज पारसी हैं मिछे, पर विधि कवित जगामि ॥

धर्मात् ब्रजभाषा में संसृष्ट और छारसी का स्पष्ट मेम है। इनके साथ ही उसमें भागधी नाग (अपभ्रंश) ब्रजन (बाड़ी बोली) का सम्मिश्रण था। छारसी के मेम के सम्बन्ध में दास पर्याप्त साक्ष्य प्रतीत हो रहे हैं इसीलिए उन्होंने ‘सहज’ का प्रयोग किया है। ‘सहज’ यहाँ पर क्रियाविशेषण है। उसका अर्थ यह है कि ब्रजभाषा में छारसी के मेम ही शब्द गृहीत होने चाहिएँ या स्वाभाविक रूप से उसमें आप जायें।

अपनी बीच परंपरा और मौखिक स्थिति के कारण ब्रजभाषा का बहुत ही अधिक प्रचार और प्रसार हुआ। इसीलिए वह स्वच्छन्दता पूर्वक अनेक भाषाओं और बोलियों के शब्दों को ग्रहण करती गई। कोई भी निष्पक्षशील भाषा अपनी मौखिक धीमा का अतिक्रमण कर गए-मए शब्दों को ग्रहणमात्र करती जाती है। वह उसकी समृद्धि और यतिशीलता का ज्ञान है। जब कोई भाषा परिमिष्ट हो जाती है तो उसके क्षेत्र के बाहर के कवि भी उसी भाषा में अपनी रचना करते हैं। ब्रजभाषा के साथ भी ऐसा ही हुआ। इसके पक्षस्थल्य उसमें बहुत सी बोलियों के शब्द अपजाने ही पा मिले। इसीलिए तो दास को कहना पड़ा था—

‘ब्रजभाषा हैत ब्रजभास ही न अटुमावो

देसे देसे कविष की बासी हूँ सों जाविप ।’

संस्कृत की विपुल वाक्यावली ब्रजभाषा को उत्तराधिकार में मिली है।
‘बिहारी ने संस्कृत के अल्पम वाक्यों का प्रयोग मनमई में सूब किया है। ब्रजभाषा
संस्कृत और अमिठ वाक्य प्रथम प्रयास काय ब्यूह इन्दीवर,
छासी-छारसी कलिन-मलिन अमिठुन कोकनद, बनसार प्रति
बिबिन मकरावृति परिमल ब्रजभाषा भुनि बह
रूपनुवा प्राप्त आदि आदि सज मनमई में देखे जा सकते हैं।

मुसलमानों के आगमन से इस देश में जिस महीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ उससे भाषा के क्षेत्र में भी गया रस आया। बहुत से मुसलमान राजा रईमों ने हिन्दू कवियों को उदारतापूर्वक आश्रय दिया। हिन्दू-मुसलमान जनता आपस में इनकी पुनर्मिल गई, कि एक दूसरे की रीति-नीति आचार विचार और भाषा-संस्कृति में भी मिश्रण आ गया। हिन्दी-साहित्य के प्रारंभिक कवियों तक की भाषा में छासी-छारसी के वाक्य बनाया ही जा मिले। छासी-छारसी के कुछ वाक्य तो जन-जीवन के रस बन गए। समर्थ कवियों ने प्रायः इन्हीं वाक्यों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। मनमई में प्रयुक्त पहचान ब्रजभाषा और बैरवा निहार ब्रजभाषा निहार हर हमाय नाहर फौर पापभाज सुपुन आदि वाक्य ऐसे ही हैं। ऐसे ही वाक्यों को राम ने ‘महज भाषा ही मिले’ कहा है। पर बहुत से अग्रजिन वाक्यों के प्रयोग से भी इनकी रचना अधूरी नहीं है जैसा—इबाका बरबाद ताकना रोताम आदिम मही (गधीह) आदि। फिर भी मनमई में ऐसे वाक्य अनेकानेक कम हैं। जिस सामंतीय आचारव्यवस्था में इनका जन्म-जायम हो रहा था उसमें ऐसे साहित्य प्रकाशक वाक्यों का प्रयोग स्वाभाविक था।

आज कहा जा चुका है कि ब्रजभाषा की कविता में संस्कृत और छासी वाक्यों का बाहुल्य रहा है। (बिहारी ने भी पर छासी-छारसी के वाक्यों को संस्कृत और ब्रजभाषा के व्याकरण में बाँटा है ता जही संस्कृत-ब्रजभाषा के वाक्यों को बिहारी उपमनों-प्रत्ययों से मजाया है।) बैरवा का बैरवाजिबो मुनाह का पुनही आदि पहले प्रकार के उदाहरण हैं तो बजाय और आदमीर जैसे वाक्य दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं।

✓ (सामान्यतः ब्रजभाषा बुन्देलखण्डी धबधी और पूर्वी ओसियों से प्रभावित है) इसके कारणों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। बिहारी के सम्बन्ध में तो प्रसिद्ध है—“बन्धु ग्वालिबर जानिए ओसियों का घाबसेब खण्ड बुँदिते नाम। लड़कपन के गहरे संस्कारों को मिटा पाया सम्भव नहीं है। बिहारी में बुन्देलखण्डी के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है—

बीब मौँति रहिहि बिरब अब देखबी मुरारि ।

बीबे मोसों आनि कै बीबे बीबहि तारि ॥

उपयुक्त दोहे में देखबी बीबे बीबे बुन्देलखण्डी धब्ब है। धन्व कवियों की मौँति ‘बीब’ का प्रयोग भी बिहारी ने किया है जो बुन्देलखण्डी है।

धबधी में भूतकालिक क्रियाओं के लक्ष्यत रूप लुप्त नसते हैं। इनमें लिंग बचन और पुरुषपद विकार की घाबका नहीं रहती। ब्रजभाषा में भी इन प्रयोगों को देखा जा सकता है। धबधी और पूर्वी के धन्व बहुते से सम्बन्ध भी ब्रजभाषा में इस तरह प्रयुक्त हुए हैं कि उन्हें सरलता पूर्वक धबध बनना कठिन हो जाता है। धबधी से प्रभावित ब्रजभाषा के कुछ लम्बे देखिए—

किन्ती न सोहुअ कुत्रबपू कहि न किहि तिअ बीम ।

बीने लगी न ह्म गली हं मुरली-धुर-लीम ॥

पिय तिअ ली हँसिके कछी छली दिँदीया बीम ।

बंदमुखी मुलबंद हैं मली बंदधम कीम ॥

(धबधी की कुछ क्रियाओं का प्रयोग भी बिहारी ने किया है—

‘बित के बित के सुख ए बित के होहि न मिय ।’)

इस पर रत्नाकर जी की टिप्पणी प्रष्टव्य है—‘होहि’ का प्रयोग है के स्थान पर धबधी भाषा में प्रचलित है। बी गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी ‘होहि’ का प्रयोग है के धर्मी में बहुतायत से किया है।

डा० हरबंसदास धर्मौ और परमानन्द सास्त्री ने “बिहारी और उनका साहित्य” में संस्कृत के स्वार्थे ‘क’ प्रत्यय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि धबधी में ‘बा’ प्रत्यय भी स्वार्थे प्रयुक्त होता है। ‘यह बा’ प्रत्यय व्यक्ति वाचक धर्मात्मा से भी जोड़ दिया जाता है जैसे हमीर से हमीरबा । बिहारी सतसई में इस प्रकार का केवल एक ही उदाहरण पाया है—

गोरी गङ्गापरी परै ईसत कपोलन गाइ ।
 कैसी असाति गबोरि बह सुनकिरा को आइ ॥”

फिल्मु नम प्रकार के प्रयोगों के एकाधिक उदाहरण बिहारी में मिल जाते हैं ।

(१) पेंचति सी बितबनि बिते धई ओर अकमाव ।

फिरि बकफनि की सुगमपनि लगनि सुगमिया आय ॥

(२) लटुआ धीं प्रमुक्त गरि बिगुनी गुन अपराह ।

बई गुनी कर छै सुई बिगुनीमै ई आइ ॥

सगनिया का ‘या’ और लटुआ का ‘बा’ एकाग्र प्रयोग है ।

(मिथलब्रह्मपूजा में बिहारी पर भाषा को तोड़-मरोड़ कर बिठत करने का आगेप मनाया है ।) इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र मुख्तार का मन उल्लेख्य है—

“बिहारी की भाषा बचती होने पर भी साहित्यिक

शब्दों की तोड़-मरोड़ है । वाक्यरचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है । यह

बाल बहुत कम कवियों में पाई जाती है । बचभाषा के कवियों में शब्दों

को तोड़-मरोड़ कर बिठत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है । ‘भूपय

और ‘इब में घरों का बहुत संयम-अंग किया है और वहीं-वहीं गठना शब्दों

का व्यवहार किया है । बिहारी की भाषा इस दृष्टि से भी बहुत कुछ सुन्दर है ।

शे-एक स्थल पर ही स्मर के लिए ‘समर कहीं ऐसे बिठत रूप मिलेंगे ।

जो यह भी नहीं जानते कि संकानि को संक्रमण (अथ संकान) भी कहते

हैं अथवा नाद के धर्म में संक्रमण शब्द है ‘रोज कहीं के धर्म में आगे के

आमनाम जाना जाता है और बचौर आधनी आदि द्वारा बचौर व्यवहार

हुआ है । मोनबाई अथ साजबानी में निकला है—बुढ़ी में कोई मनमन नहीं

संभूत में आगे और बाद होना शब्द है और बाद का धर्म भी बारत है

‘मिसान पढ़ाव या भुजाव के धर्म में पुगनी बचिता में मना पड़ा है बचनी

बचभाषा में ‘निदानता’ रूप ही आता है अथवा नि का कर बहुवचन में यही

खेगा यदि पचासों शब्द उनको समझ में न आएँ तो बचौर बिहारी का

क्या शाय ? ।

इस सम्बन्ध में रत्नाकर जी ने मुख्यतः दो बिमारियों का उल्लेख किया है—'बितई' और 'किय' का। बितई वस्तुतः ब्रजभाषा व्याकरण के अनुसार किया के कृष्ण सुट नहीं माना जा सकता। 'बितबना' का भूतकान्तिक किरण प्रयोग प्रयोग ब्रज में बितयो या बितबी होया और प्रबपी में बितई। पर बिहारी ने लिखा है—

बितई बड़बड़हि लखनु उरि पूँचत-पट मॉह ।

ब्रज की बड़ी घुसाई के किबनु बूबीकी कौह ॥

रत्नाकर जी का कहना है कि इस शब्द का प्रयोग बिहारी ने सब ठीक प्रकर्मक ही किया है। १४४ ३१२, ४२३ तथा ५२३ श्लोकों के शीर्षों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है और सब में प्रकर्मक ही प्रयोग है।^१ पर पं बिभत्ताय प्रसाद मिश्र ने यह कहते हुए कि 'पर लखी' का प्रयोग भी मौजूद है' इस प्रयोग को चित्य माना है।

लेकिन इस तरह के प्रयोग पुष्पनी ब्रजभाषा में मिलते हैं—

हीं पठई सी खेन सुखि सैं रहि मानी जाय ।^२

'किय' का 'कियी' के धर्म में बिहारी ने प्रयोग किया है (३० बिहारी रत्नाकर पौ० ४२, २१२)। रत्नाकर जी का कहना है कि 'किय शब्द का एक बचन पुंस्त्रिभ रूप सामान्यतः 'कियी' होता है पर ४२ में श्लोक के शीर्ष में बिहारी ने भी अन्य कवियों की देखा-देखी किब रूप ही एकवचन पुंस्त्रिभ में प्रयुक्त कर दिया है। ऐसे प्रयोग गोस्वामी तुलसीदास और सुरदास जी ने अधिकता से किए हैं।^३

जो हो पर यह प्रयोग चित्य ही माना जायगा।

सिंग की बड़बड़ी प्रायः ब्रजभाषा के सभी कवियों में मिलती है। ब्रजभाषा में अनेक शब्दों की जोड़ियों के संमिश्रण के कारण इस प्रकार की बड़बड़ी का सन्निवेश स्वाभाविक हो गया क्योंकि सिंग की बड़बड़ी एक ही शब्द एक शब्द में एक सिंग में प्रयुक्त होता है तो दूसरे शब्द में दूसरे सिंग में। बिहारी भी इससे धपूते नहीं रह सके। रत्नाकर जी टीका में इस प्रकार के कई शब्दों

१—बिहारी रत्नाकर अमीन सारस्वत १ १ ३

२—इलाह-उल्लेखि या प्र ब्रज भाषा १ ३३

३—कविपर बिहारी १ ११०—११

का निर्देश किया गया है जो लिख की दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं माने जा सकते।

एलाकर जी ने इस सिमसिमे में उदासु (श्लो० ११८ २१२) बरप (श्लो० २१०) मिदामु (श्लो० १२१) ख (श्लो० ११४) पल (श्लो० १८१) बरबास (श्लो० ११७) बसु (श्लो० १६२) आदि शब्दों की लिए सम्बन्धी नुटियों का जम्मा किया है। इनमें से कुछ का प्रयोग उन्होंने नुटिपूज स्वीकार कर लिया है और कुछ को परंपरा से प्राप्त बताया है। 'उदास' शब्द को ही नहीं। एलाकर जी का कहना है—'भाषा के कवियों ने इस शब्द को पुस्तिक तथा स्त्रीलिंग दोनों रूपों में प्रयुक्त किया है। बिहारी ने भी इसका दोनों प्रकार से प्रयोग किया है। इस शब्द के अतिरिक्त सठसई के और साठ शब्दों में यह शब्द आया है। २१२ ११४ ४४८, ४८७ १०७ ११४ १११ तथा ११० शब्दों के शब्द इष्ट हैं। इनमें से कई शब्दों में इसका स्त्रीलिंग प्रयोग हुआ है और कई में पुस्तिक-प्रयोग। 'बरप' शब्द के सम्बन्ध में उनका कहना है कि इसे उन्होंने स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया है जब की बोधबाल की भाषा में इसका स्त्रीलिंग प्रयोग सुनने में आता है पर कविता में इसका प्रयोग पुस्तिक में ही हुआ है। 'मिदामु' सामान्यतः पुस्तिक माना जाता है पर बिहारी ने इसका प्रयोग पुस्तिकत्व किया है। ४७१ में शब्दों में इसके साथ 'बपी' तथा किसी शब्दों का प्रयोग यह मिश्र करता है कि वे इसे पुस्तिक मानते थे।

'ख' का प्रयोग बिहारी ने स्त्री लिंग में किया है (दे श्लो २१६, २४३ १६४ और ४१२)। यह फारसी का शब्द है जो वही स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है। किन्तु भाषा में इसका दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। बिहारी ने इसको स्त्रीलिंग मानकर कम से कम एकरूपता की रक्षा की है। 'पल' का प्रयोग मस्तुन व्याकरण के अनुसार उन्होंने पुस्तिकत्व किया है जब कि भाषा में पल और पलक का स्त्रीलिंग प्रयोग होता है।

'बरबासु' (श्लो० ११७) पर अपने विचार प्रकट करते हुए एलाकर जी ने लिखा है—बरबास शब्द का प्रयोग यही बिहारी ने पुस्तिकत्व किया है। यह शब्द 'बास-बास' से बना है। संस्कृत में यह शब्द पुस्तिक ही होता है। पर भाषा में स्त्री लिंग माना जाता है। एलाकर जी ने बरबास को

उकारान्त मानकर इसे पुंलिंग मान लिया है। यदि इसे अकारान्त ही माना जाय और संस्कृत के 'वायव्य' अपभ्रंश-रूप से इसकी संज्ञा न बैठकर फ़ारसी के बकवास से बिठाई जाय तो प्राक् प्रापायाम की आवश्यकता न पड़े। जब सतसई में फ़ारसी-फ़ारसी के साधारण-असाधारण शब्द भरे पड़े हैं तो इसे फ़ारसी के बकवास का ही एक रूप क्यों न माना जाय? फ़ारसी में बकवास स्वीनियम ही प्रयुक्त होता है। हम दोहे में उकारान्त न होने पर इसे स्वीनियम मान लेने पर क्या प्राप्ति हो सकती है?

अब आइए 'बाहु' शब्द पर विचार करें। उल्लास जी का कहना है कि 'इस दोहे में बिहारी ने वायु शब्द का स्वीनियम-प्रयोग किया है पर इसके पहले के दोहे में 'बाह' शब्द को पुंलिंग माना है। भाषा में वायु शब्द स्वीनियम तथा पुंलिंग दोनों ही रीति से प्रयुक्त होता है'। यहाँ पर दोनों बोहों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) जपटी पुहुप-पराग-पद सभी स्नेह मकरंद ।

आवधि बारि बबोह की सुखर वायु पति मंद ॥

(२) सुबहु स्नेह मकरंद-कव उद-उद-सर विरमाह ।

आवहु तृक्ष्ण हैसैं हैं बकपी बबोही बाह ॥

कहना न होना कि उदाहरण संख्या १ में वायु का स्वीनियम प्रयोग है और उदाहरण संख्या २ में बाह का पुंलियम प्रयोग है। पहले उदाहरण में वायु प्रस्तुत है और 'बारि बबोह' अप्रस्तुत। इसमें 'बाहु' का प्रयोग स्वीनियम में ही हुआ है। दूसरे उदाहरण के प्रस्तुत-अप्रस्तुत में सिद्ध-वचन साम्य के स्थापनार्थ वायु का पुंलियम प्रयोग हुआ है। कुछ कुशल कवियों ने उपमात्मकार में सिद्ध-वचन साम्य के साथ-साथ व्याकरण की भी रक्षा कर ली है—

तं प्राप्य सदावपचावर्चं व्यावर्तताम्बोपममात्कुमारी ।

न हि प्रपुन्रं सहकारमेव दृष्टान्तं कंचति पटपदासी ॥

—आशिदास रजुवंश ११११

इसमें उपमय कुमारी है और उपमान पटपदासी। सिद्धवचन-साम्य के लिए पटपद का पटपदासी कर लिया गया है।

(सपत्नी कनिषथ बुद्धियों के बावजूद भी बिहारी की भाषा प्रतिनिष्ठित ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा के व्याकरण-मंगल नियमों का निर्धारण करने के लिए रत्नाकर जी ने सतमर् की भाषा को प्रतिमान माना।) बिहारी की भाषा को बुद्धि में रखने हुए रत्नाकर जी की वाच्य-भाषा का सम्पूर्ण रोचक विषय होया। बिहारी की भाषा की खेयता का वाच्य पुनः कवियों को भी था। म १३६३ म कुसुमपति मिश्र ने 'भुक्ति तरंगिणी' म वाच्य लिखा है—

मूर्ति मूर्ति रचमा सरस देव गिरा जी व्यास ।

जो भाषा सब कविनि में दिमल बिहारी वाच्य ॥

फिर भी उसे प्रबन्ध-काव्य नहीं कहा जाता। उसी प्रकार प्रबन्ध काव्य के बीच मुक्तक को पुनः परिचय देने का स्तोक या पद्य मुक्तक नहीं हो सके।

भाषाई रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक और प्रबन्ध का भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है—'मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की चारा नहीं रहती जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने को मूलाहुता पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छोटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका बोझी रस के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्पति है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुल्लक है। उसमें उत्तरोत्तर घनेक वृक्षों द्वारा संघटित पूरा जीवन का या उसके किसी अंग का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई एक रमणीय वृक्ष सहसा सामने ला दिया जाता है।'

इस उद्धरण में शुक्ल जी ने मुक्तक की गुल्लक कह कर उसकी कान्ति-छाँट, लयास अर्थात् शिल्प सज्जा की ओर जो ध्यान आकृष्ट किया है वह बहुत संपन्न है पर प्रबन्ध और मुक्तक की प्रभावान्विति को बर्णन करते हुए एक को स्थायी और दूसरे को उठता स्थायी न मानना तर्कपूर्ण नहीं लगता। श्रीवांस विद्यापति शूरदास तुलसीदास के मुक्तकों को कम स्थायी कैसे माना जा सकता है? इन सभी कवियों ने कुछ मनोवस्थाओं के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं वे सर्वथा मार्मिक तथा अविस्मरणीय हैं। इसीलिए तो कहा गया है—'अमरक केरेक स्तोक प्रबन्ध सदायते। अमरक के एक एक स्तोक पर सत-सत प्रबन्ध निरंतर हैं। इससे कम से कम इतना तो स्पष्ट ही है कि मुक्तक प्रतिघम रस-रस और मोहप्रिय रहे हैं। ध्वनिवादियों के अनुसार मुक्तकों की उदात्तता निर्विवाद हो चुकी है।

मुक्तकों की रसार्जता उनके प्रसंग-वर्णन और मनस्पर्शी अंग वृक्षों के चुनाव पर निर्भर है। प्रसंग वर्णन दो प्रकार का होता है—यदि मुक्त और यदि मुक्त या स्वर्णन। यदि मुक्त सम्बन्ध-रूपना के लिए सहायक का सात्विक विहित काव्य-परिपाटियों से अमिश्र होना आवश्यक है। काव्य-रसियों की अधिक जानकारी मुक्तक उन लोगों को होती है जो एक विशेष सांस्कृतिक परिवेश के प्राणी होते हैं। मुक्तक इन्हीं लोगों के बीच अधिक सोमन प्रदीप्त होते हैं। इसीलिए मध्यकाल के बरबाद वातावरण में इनके विकास का

मच्छा मक्षमर मिया । काक-परिपाटी म अनमिन्न पाटक निम्नमिति
को धाम्नाद-प्रमना म धारिचिन्ता ही रह जायगा —

- (१) एकजु पीक धंजनु धपर, बरे महाबद भाष ।
धातु मित्र मु मसी करी, मले बन हा काष ॥
- (२) ठरति मोम् मे मित्रि गर्द मेक न होति जनाद ।
सोपे के दोरे जगी धत्री चली मँग जाह ॥
- (३) काक धर्माधिक करिकई धकि धमि सची मिहोति ।
धातुधमि मे देखियनु डर उरुमीही मीति ॥

एत दोहो का पुन रमाम्बादन बही कर मकना है का लीङ्गा धमिसारि
धंजुलिपीवना की परिभाषाओं म धमिन्न हो ।

एक दुमरा उशहरथ नीजिए—

विभुराई अबर धीति-यग मित्रि हूमी गहि गॉन ।
सजब हूमी ही धधि ठिर्वा धापी हूमी उमासि ॥

यदि कोई इस कहि का न जानता हा कि नायक प्रम क प्रमम में महावर
मयाया करत है उनक साहिब का (कप) म लेवे-लेवे धायान लोगों के
हृदय पर बरकर हान है जो बाई कुल नहीं बह मरना । धापी हूमी उमासि
का नायक मसी मुनया । प्रमम धर होया कि बाई नायिका धरमी मीन के
धर में देना-देना महावर मया देनकर इस ध्यम्य म हूमी कि इस महावर
मयाने का भी लऊर मही है । पर उमक हूमाने पर मीन कुछ मजिबत हूई
धीर हूमाने-हूमाने मी हा धई । नायिका मे मुन लाल निया कि धरे नायक न
ही इसक धर म महावर पाया है धंगलाल-अन्य बंध के बाध्य धर धम न्या
है, इमाने बह पूरी ठरह हूमान मी नहीं पाई बीच म ही उमान लेन मयी ।^{१७}

पर मुहारी धं मरम-बन्धना को उमना ही मरम देना बाहिण जितना
उमना धाय है । मरम-बन्धना बाध्य का महावर उपररप है धर न्य
बाध्य मही है । धर बन्धना जहाँ बरकरार हापी वहाँ कदियों की प्रमना
बुध्दामकना को बहूत कुछ गीम बना देपी । बिहारी मे बरकरार मंग

कल्पना के प्रतिरिक्त स्वाभाविक संदर्भ-कल्पना का भी सहाय निया है और ऐसी कल्पना का समर्थन प्राथमिक है। एक उदाहरण लीजिए—

धुगमैनी घर की करक, उर-उझाह, ठग कुच ।

बिग ही पिच-आपस कमलि पछरन बगी हुकुच ॥

इसके पूर्व के उदाहरण में जिसमें सात्विक कल्प की कवि का सहाय निया गया है काव्य पक्ष सब गया है और उसके स्थान पर सामाजिक-व्यवस्था के समर्थन के सामने आई है। किन्तु इस उदाहरण में प्रागमिष्य-व्यवस्था का नायिका ने प्रिय के प्रागमन का शुभ अनुमान अनुमान कर अपने भुवन-वसन का बदलना प्रारंभ कर दिया है। इस बोहे की संदर्भ-कल्पना सहज है समझने योग्य नहीं। इसलिए इसका काव्य-पक्ष अपने आप निरर्थक भाग्य है।

स्वतन्त्र संदर्भ-कल्पना वहाँ की जाती है जहाँ काव्य-साहित्य की कविता का काम नहीं होती। पर इन कल्पनाओं के लिए भी आवश्यक है कि सहाय को काव्य-विषयक हीन-व्यवस्था प्रभाव हो—

बहिं जगहाह, बहिं जाह वर, किन्तु बिहुट्ठी तकि तीर ।

बसि जुमहरी छे बिरहि बिहसति रसति ब और ॥

इस बोहे का काव्य-साहित्य तभी प्रस्तुति होगा जब यह कल्पना कर ली जाय कि नायिका के स्नान-स्नान पर नायक का गया है और नायिका उसकी दृष्टि-साक्षात्कार के कारण स्नान में विलम्ब करती है। यह संदर्भ-कल्पना किसी काव्य-कवि से नहीं होती है। यों इस प्रकार की संदर्भ-कल्पना किसी तरह मौलिक नहीं कही जा सकती पर इसको किसी खास परिपक्वता के भीतर नहीं रखा जा सकता।

इन संदर्भ-कल्पनाओं के आधार पर ही बिहारी को रीतिव्यवस्था का प्रतिनिधि कवि कहा गया है। पर ये संदर्भ-कल्पनाएँ इस परंपरा में माने जाने वाले प्राकृत संस्कृत के व्यक्तियों में भी मिलती हैं। इसलिए बिहारी की रीतिव्यवस्था पर प्रकाश बिहारी सब जाता है।

रह गई सख्त दुखदो के मुलाज की जाय । जो सख्त दुख जीवन के शिठो-पहरे मर्म का उपचाटन करेवा यह उज्जवा ही प्रभावोत्पादक और जीवन्त होवा। यह दुख किसी आश्वासन या वृत्ति पर भी आधारित हो सकता है और यह जीवन्तानुभव पर भी। सूर, तुमसी आदि सख्त कवियों के मुक्तक प्रथम कोटि में प्रायः तो बिहारी जनमानस के दुखों कीटि में।

में तो कई दृष्टियों से मुक्तकों का वर्गीकरण किया गया है पर काव्य-जीवासाकार रावदेयर का वर्गीकरण सर्वाधिक संगत प्रतीत होता है। उनके

मतानुसार मुक्तकों के पाँच भेद हैं—(१) शुद्ध

मेर (२) बिज (३) कभोरेव (४) संविधानक यू योर

(५) धान्धानकवान्। जो मुक्तक इतिवृत्त विरहित

हो वह शुद्ध के नाम से अभिहित होता है। यदि शुद्ध को विस्तार दिया जाय तो वह बिज कहा जायगा। कहा है उन्मिग होने वाला मुक्तक कभोरेव कहा जाता है। किसी संवत्सरापूर्व घटना या संविधान से सम्बन्धित मुक्तक संविधानक यू की कोटि में रखा जायगा। धान्धानकवान् मुक्तकों में ऐतिहासिक पात्रों की कल्पना रंजन बना दिया जाता है। बिहारी सगहई में सभी के उदाहरण मिल जायेंगे।

शुद्ध मुक्तक—

अथ जय ज्वि की छपर उपरति जाति जहेह।

जरी बावरीक ठह जगी भरी सी देह ॥

इसमें कोई वृत्त नहीं है। नायिका का सहज सौन्दर्य अपने आप चित्रित हो गया है।

बिज-मुक्तक—

घाए छाय मही करी मेरव मान-भरोर।

चुरि करी वह देखिदे दृष्य दिगुनिषा-दोर ॥

इसमें मनीषिकार को बिजिन् विस्तार दे दिया गया है।

संविधानक यू—

जरिका छैवै के मिसनि खंगर ओ दिग घाय।

गयी जवानक चाँपुरी जाली कैस हुआव ॥

इसमें वृत्त नायक की धनपूर्व जेम जोड़ा का कवन है जो एक संज्ञा-घटना है।

धान्धानकवान्—

बाह गारज बाहर गारज बाह मुभावी देरि।

छोटी चीज की बन्धि में हँसी सबव तन देरि ॥

जीव के बीच बिठी हुई बालेयों का कवन ऐतिहासिक या पौराणिक धान्धान है इसे कानना के विभव द्वारा रमणीय बना लिया गया है। 'नहि

परम' हवास' बोहे को कबालक मुक्तक कहा जा सकता है। पर बिहारी में कबालक और आस्मानवान् मुक्तक कम मिलते हैं, जन्में कुछ बिज और संविधानक से मुक्तकों की अधिकता है। मस्त कवि प्रायः आस्मानमूलक मुक्तकों की सर्जना करते रहे हैं पर अन्ततः कवि प्रायः विमुक्त भावजीनी होने के कारण आस्मानों का सहारा कम लेते थे। हास्य समर ऐसे ही कवि न और बिहारी इन्हीं की काव्य-परंपरा में पड़ते हैं।

बिहारी सतसई में-बोहा छंद का प्रयोग किया गया है, कहीं-कहीं सोरठा भी दिखाई दे जाता है। भाषा और संस्कृति की नई करबट के साथ ही छंद करबट बदलता है। अपभ्रंश भाषा-साहित्य बोहा

बोहा छंद साथ लेकर आया। उस कास की वपपूर्ण बीरवा परक उक्तियों कोमल शृंगारिक भावनाओं तथा

मीतिपरक सूक्तियों को बाँधने में इसे पूरी सफलता मिली। अपभ्रंश का यह अपना छंद है। डा बिहारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'बोहा वा बूहा अपभ्रंश का अपना छंद है। उसी प्रकार जिस प्रकार भाषा प्राकृत का अपना छंद है। बाद में तो 'भाषा बंध' से प्राकृत रचना और 'बोहा बन्ध' से अपभ्रंश रचना का बोध होने लगा था। 'प्रबंध-विन्दामणि' में तो 'बूहा बिधा' में बिबाह करनेवाले दो चारनों के बिबाह की कथा आई है जो वह सूचित करती है कि अपभ्रंश काव्य को 'बूहा बिधा' भी कहने लगे थे। बोहा अपभ्रंश के पूर्ववर्ती साहित्य में एक हम अपरिचित है किन्तु परवर्ती हिन्दी साहित्य में यह छंद अपनी पूरी महिमा के साथ वर्तमान है। डॉ० द्विवेदी ने बोहे का संबंध धामीरों से जोड़ा है क्योंकि अपभ्रंश भाषा भी धामीरों से संबद्ध है। सोरठा का संबंध सौराष्ट्र से जोड़ा गया है, इसे सोरठ बोहा भी कहते हैं। धामीरों-गुर्जरों का सौराष्ट्र से पुराना संबंध है।

अपभ्रंश के कवियों के बादबूढ़ हिन्दी के अनेक विशिष्ट कवियों ने इस छंद का प्रयोग किया है। मीरा और भूर के पदों में भी इसका विनिमोह हुआ है। जाबसी के पद्यात्मक और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस के बीच-बीच इस छंद का प्रयोग किया गया है। यह प्रबंध बिबाह में कठिनाई मिमाने के साथ-साथ विराम का ही काम करता है। अपभ्रंश काव्यों में कई पंक्तियों के बाद जता देन की रीति प्रचलित थी। पश्चिमी अपभ्रंश में बोहे

का घटा इना प्रचलित भी था। पचावन और रामचरितमानस में यह घटारमक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

रीति-काव्यों के लक्षण-निर्णय में बाहे का जब प्रयोग किया गया। कदाचित् स्मरण की सुविधा से इस अपनाना अधिक मंगल मया। वहीं-वहीं जो उदाहरण के लिए भी इसका उपयोग किया गया है। हिन्दी-मनमोहनों की परंपरा में तो इस छंद का एकछत्र राज्य है।

पर मात्मी और दोहरा क्या है? गोस्वामी तुलसीदास ने एक स्थान पर कहा है—'मात्मी सबरी दोहरा कहि निहनी उपखान। इसमें पना भगना है कि मात्मी और दोहरा दोहे में कुछ भिन्न है। पहा मात्मी' मात्मी के प्रबंध में ही प्रयुक्त जाना रहा होना—गालि करव आनखर पाएँ। किन्तु बाद में जब मात्मी के लिए दोहा छंद प्रयोग में ल आया जाने लगा तब सात्मी मात्र दोहा का समानार्थक हो गया। फिर भी विषय-वस्तु की दृष्टि से सात्मी की अपनी विशिष्ट परंपरा बनी ही रही। और दोहरा इसमें तो स्वयं नहीं प्रयुक्त है बल्कि मात्मी की धमक से इसका उन्मूलन बने करन? भिन्नरीति के मतानुसार दोह के विषय बरना में ही एक-एक मात्रा घटा देने में दोहरा छंद बनता है।

बाह्य घट मम मात्मी छंद है। इसके पहले तथा नीमरे बरना में ११ ११ और दूसरे तथा चौथे बरना में ११ ११ मात्राएँ हानी हैं। सामान्यतः दोहे का यही लक्षण है। बरनामा के प्रकाश पति अंगप्रोक्षणम 'रत्नाकर' में दोहे के कई लक्षणों को उद्घृत करने हुए उसमें अनिवार्य प्रकाश द्यानि काय किया है। उन्होंने उसका लक्षण निर्धारित करते हुए लिखा है—

आठ तीस है प्रथम पद द्वितीय पद त्रिसु ताव।

तसु में त्रय पर है न गुरु बह दोहा की ताव ॥^१

इसका अर्थ है कि बाहे के प्रथम तथा द्वितीय पद में ८ ३ २ और ८ १ पर मात्राएँ घटनी हैं जानी चाहिए। अर्थात् ८वीं ३वीं में घटनी ११वीं १२वीं में मिलकर गुरु में हो जाय। पर ८ ३ धाति पर घटनी का प्रयुक्त होना आवश्यक नहीं है। बाह्यो की दोह का लक्षण इस प्रकार है—८+३+२ ८+(३)। रत्नाकर की क इस लक्षण-निर्णय के आधार बिहारी मामई के बाहे है।

प्रायः छंदों की भाँति बोहा अम्ह भी निरन्तर पारिभाषित होता रहा है। बिहारी-सतसई में आकर उसे जैसे पूजता प्राप्त हो गई। धाड़े में बहुत अधिक कह जाने के लिए बड़ी कसा-कुसमता अपेक्षित होती है। बोहे की इसी विशेषता को लक्ष्य करते हुए रहीम ने कहा है—

धीरज बोहा अरज के, धाखर बोरि जाहि ।
ज्यौं रहीम कह कुँवरी सिमिटि कूहि चलि जाहि ॥

बोह में व्यापक धर्म को समेट लेना बोहे की समाहार शक्ति पर निर्भर है। किन्तु समाहार की समता केवल सामासिक पदावली का प्रयोग पर नहीं आधारित है। बिहारी अपने बाहों में रूप भाव चैष्टा आदि का प्रभावोत्पादक बिज लड़ा करते हैं। इस बिज के लिए उन्होंने जो फलक चुना है उस पर थोड़ी ही रेखाएँ खींची जा सकती हैं। इन रेखाओं को खींच देने में ही—प्रभावोत्पादक डंग से खींच देने में—बिज की पम्बिप्यु और वास्वर बनाया जा सकता है। जिस तरह रेखा-बिजों में कुछ ही सार्क लकीरों द्वारा बिज को अच-सूर्य बना दिया जाता है उसी तरह बिहारी के बोहों को भी कुछ अच गर्म-व्यापारों के चुनाव द्वारा व्यंजक बना दिया गया है।

वस्तु या व्यापारों के चुनाव में बिहारी ने जिस कुसमता का परिचय दिया उसे निम्नलिखित बोहों में देखा जा सकता है—

छँडी बाह, कबित-रस सरस राग, रति-रंग ।
× × ×
तब मूचक, अरुन हावि पगवि महावर रंग ।
(वस्तु)
× × ×
जमक ठमक हौंसी ससक मसक पपट छपटावि ।
(व्यापार)

अपेक्षित भावों की अभिव्यक्ति में बिहारी ने कुछ ऐसे वस्तु-व्यापारों का चुनाव किया है जो प्रभावपूर्ण भाव-बिज लड़ा करने में बहुत ही समर्थ हैं। इन वस्तु-व्यापारों में जो कम स्थापन किया गया है वह भी प्रभावोत्पादन में विशेष योग्य होता है। एक बोहा देखिए—

सपन कुँव जम बच तिमिर अधिक बोंयेरी रात ।
तक न दुरि है स्यास बह दीप-सिखा-सी जात ॥

पहली पक्ति में तीन वस्तुओं कुंज निमिर बीबेरी रात का जो कम दिया गया है वह पक्ति को भयंकर कासिमा की उबारने में कितना सहाय है।

इनके चुनाव में उन्होंने प्रायः तीन या चार ही वस्तु-व्यापारों को चुना है इसमें पक्षिक के लिए दोहे में सबकास ही कही है। बाहे उपमा रूपक भयंमनि बिगोबाभाम दृष्टांत आदि अलंकारों का निर्वाह करना हो बाहे अनुभाव हाव आदि का चित्रण तथा कुछ-भयं-भयं वस्तु-व्यापारों को चुना गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिस व्यापार-चोचन का नाम दिया है उसे कतसर्द में सामान्यतः सचय देखा जा सकता है।

कमा के प्रति आत्यधिक सचेत होने के कारण इनके दोहों में टेकनीक संबंधी त्रुटि नहीं आ पाई है। लघुके हिन्दी-आहित्य में इनका खूबसूरत कलाकार छाप ही कोई हुआ हो। आधुनिक हिन्दी-आहित्य में रत्नाकर जी में जो सचेतता बिताई पड़नी है वह बिहारी में अनुप्राणित तथा प्रभावित है। पर जहाँ बहने की सचेतता गुप्त के अनुकूल नहीं पड़ती वहाँ दूसरे की गुप्त के सबधा अनुकूल बन पड़ी है। यही कारण है कि बिहारी का अंशाल रूप-विन्यास चोचन प्रतीत होता है। उसके दोहों के निर्माण में जिस क्रमागत पर-विन्यास (रेगुलैरिटी) और संयोजन (निमिटी) का विनिर्माण हुआ है वह उन्हें अपारमक पुनरावृत्ति प्रदान करता है।

जिस गुप्त में बिहारी के दोहे निर्बिन हुए वह गुप्त अपनी व्यंजनि तथा काव्यात्मक बाधियों के लिए इतिहास में सर्वत्र पाए गए। चित्र तथा वास्तु-कला में मूर्धन्यात्मक वाच-व्यंजना को कलावित करने में जिस आंतरिक दक्षि का परिचय मिलता है बिहारी के बाहे भी उसी का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बिहारी का दसरा हुआ समाज

बिहारी के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी प्राप्त हुई है उसके आधार पर यह निश्चित कहा जा सकता है कि उनका जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। पर जयपुर दरबार की कथा से वे सामंतीय वर्ग में शीर्षित हो गए। फिर तो उन्होंने अपने को उस वातावरण में ऐसा भासा कि उनका समूचा दृष्टिकोण नागरकों का दृष्टिकोण हो गया। इसलिये उनके देखे हुए समाज का विश्लेषण करते हुए इस बात का ध्यान रखना होगा कि उन्होंने जो कुछ कहा है 'नागरकता के नाम' कहा है। पर अपने मध्यवर्गीय संस्कारों के फलस्वरूप उस वर्ग की भी बहुत सी बातें जाने-अनजाने उनके बोझों में अभिभूत हो उठी हैं। ग्राम के सम्बन्ध में हमके दृष्टिकोण की वर्षा पंथ के प्रारंभ में ही की जा चुकी है।

बिहारी को अपनी नागर-संस्कृति पर गर्व था। इसी से वे उनके की बोट कहते हैं—ये न यहाँ नागर बहू"। इन नागरों के प्रतिनिधि थे मिर्जा राजा बरसिह। उनके कतिपय प्रश्नों की बिहारी के ही शब्दों में सुनिष्ट—

- (१) प्रतिनिधित्व बरसिह हुति द्विपति दरपन-नाम ।
सब जग जीवन को किनो कब-क्यूँ मनु काम ॥
- (२) नहि पराम नहि मजुर मनु नहि दिवस इहि काज ।
सबो कबो ही सों रीच्यो भागों कीम हवास ॥

(३) स्वयं मुहूर्त न ग्रह कृपा देखि बिहंग बिचारि ।

बाज पार्यै पानि परि तैं पष्पीन न भारि ॥

उपमूर्त तीन राहों में नागर संस्थान के तीन पक्षों के प्रतिनिधि बिच प्रस्तुत किए गए हैं । पहला बोहा उग्र संस्थान के बीमर-बिलास का प्रतीक है तो दूसरा उमकी काम-कीड़ा का । तीसरे में उमकी बिचलता बिलगहीनता तथा व्यक्तित्वहीनता बिबिध है । पहली और दूसरी विशेषताओं की वरम परिणति तीसरी में हो दीख पड़ती है ।

मिर्जा राजा जयसिंह ने जिस सर्वज-नाम की जर्बा ऊपर की गई है वह कबल बिहारी की ही कल्पना में नहीं धामा का । इस का एक आदर्श महसूस देखिए—

उज्ज्वल चरित्र खंड सातवें महज महा

संजख सैबाश जन्मखंडक की बीट ही ।

मीठा हू बाधवि के जाहनि बिसाख ज्योति

बाहर तुम्हारा जगी खोतिव की बीट ही ।

राज मार्गों की नयनाभिराम झंकी लेने के लिए इन प्राचार्यों में जो पबारा बने होठ वे उममें मे भावित्वी हुई नायिका को बेराकर नायक बंद उठना का—पावक भर भी भ्रमर के गई जगीन भंडक । पावक की लपट भी बिहारी की नायिका बाज भी सहृदया में ऐश्वर्यानुभूति जायगि कर बती है ।

जिस बातावरण में बिहारी का समय व्यतीत हो रहा था वह बिवाहिता से घोर-घोर था । सामान्य से नारी के प्रति स्वयं बुद्धिमान की धाया ही क्या की जा सकती थी । मुगलों की छत्र छाया में वे बिनामी मामल निमय बिवास का गुरु मूठ रहे थे । उनके लिए पितृ-दक्षि 'छाया दाहिनी' से बम में थी । उन्हीं के मनस्वीय के लिए तो नायिका बंद का बिजुल-ग्रहित तैयार हुआ था । बिहारी ने नायिका से के लक्षण-उदाहरण तो नहीं प्रस्तुत किए पर नायिका का बनेबानक भविष्यकों बल्लियों मना-शाया आदि के बटतीमें बिच गीत । उन्हें पर में घाट-बाट में बुद्ध-जन में सबब योगी में भगे हुई देता । इसीलिए पीछे वहीं पर देने लिखा है कि वे अपने दुप के प्रति पूरी तरह से ईमानदार थे । नायिका का के सहज सोच और भोवतन

से उनको कुछ विशेष लेना देना नहीं था। वे उनके सम्बाज घोर घोड़ी पर फिटा थे—जो एक विशेष प्रकार के बुष्टिकोष का चोकर था।

अनेक धामूपणों से अलंकृत तथा पारखर्ची बस्त्रों में भिपटी हुई स्वयम्भूरी सी अमर मगर करने वाली रैह-भुति वाली नायिकाएँ सामन्त-सरदारी के मनोरंजन का साधन थीं। बारीक रेशमी छाड़ी पहनने पर उसकी अंग-कान्ति इस तरह सोमन प्रदीत होती थी मानो अमरबाबर के भीतर अमममाटी हुई बीप-अमोति। बारीक नीले बूँद की छोट से खींचता हुआ नायिका का चमक मुक्त ऐसा लगता था मानो कालिन्दी के नीचे जल में मिलमिलाता हुआ अमरमा। अंग-अपाति के सम्बन्ध में किसी को क्या धारणा हो सकती है। पर जब नायिका की सखी उसकी हँसीही बात के विषय में सावधान रहने को कहती है तो गम्ब हो जाता है—

बैकु हँसीही बाबि छवि, अकरी वरत मुख मीदि ।

थोका अमकवि थीं में वरत थींविही छीदि ॥

वास्तविकता यह थी कि सामन्तीय जीवन का मुकाब सामान्य के प्रति न होकर असाधारण के प्रति होता था। ऐसी स्थिति में नायिकाओं का भी अनेक बुष्टियों से आकर्षक और सोमन होना आवश्यक था।

नायिकाओं की अनेकानेक बेप्ताओं का अर्थ—अवाचित् रीतिकालीन अम्य कवियों की अपेक्षा बिहारी-समय में इसकी अधिकता है—अप्युक्त अम्य को ही प्रमाणित करता है। बेप्ताओं का विस्तृत वर्णन पीछे किया जा चुका है। यहाँ पर एक उदाहरण अलग होगा—

मीह उँई अँचर उँचदि मीर मोरि मुँह मोरि ।

मीदि मीदि मीतर गई छीदि छीदि छीं अँरि ॥

ये बेप्ताएँ ऐसी हैं जिनमें उचित आकृष्ट अम्य रहते थे। अतः उनका निरपेक्ष बुष्टिकोष भी देखें—

अहे हँसी विष धरै विन लूँ बीदि उँचरि ।

मीह है मीहें छुँदै ऐसे ही छदि वरि ॥

प्रेम बीहा को व्यक्त करने के लिए रीतिकालीन कवियों ने अनेक अलग सीध लेखक नृत्य यात्रा रूप उदाहरण बोला अतः त्योहार आदि को भी अँदम के रूप में ग्रहण किया है। मनोरंजनात्मकों का कहना है कि अँदम

घोर क्त्वा प्रेमोत्थन के प्रतिरिक्त घोर दुष्ट नहीं है। पर हम सांस्कृतिक ज्ञान के मुख में इन्हें उत्थन के रूप में न स्वीकार करके उद्दीपन के रूप में ग्रहण किया गया। इनका फल यह हुआ कि इनकी स्वतन्त्र छत्ता झुग हा गई।

उत्थन के नाम पर फासगुल्लेख का वर्णन हम काम के कवियों ने बहुत किया है। जो अपने आप में इस उत्थन का काफी महत्व है। मगोबिस्नेपचात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह मानसिक रचना का काम करता है। बिहारी के पद्याकर, बेनी प्रवीन वन धानन्द ठाकुर, काम आदि कवियों ने हम महोत्थन का रोगीन वर्णन किया है। 'होती के हारंग' का ऐसा ऐन्द्रिय चित्र प्रथम नहीं प्राप्त हो सके।

'अनु के अनुक्रम केसरिया घोर पीत बरसा की बहार [कोकिल] घोर गीहे की पुकार गूँथ बाघ पुमान-केसर घोर घबीर की भोली पिचकारी की पुहार स्त्री-पुरुषों की लपक-झपक बर-गक रीझ-लीझ बाग-बीड़ बरसों की सीसा-सानी दण्ड-डाँध मूर्खन बंशी आदि सभी उपकरणों को एकत्र किया गया है।' पर इसके वर्णन में बिहारी की दृष्टि घीरो से किंचित् विभ्र है। इनका दृष्टिकोण इतना टिपिकल सामर्थ्य है कि हमसे से घमन हो गया है। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) ज्यों ज्यों पट्ट पट्टकति दहति ईसवि बचावति मैव ।

त्यों त्यों बिपद उदाराई कणुवा देव बने न ह ।

(२) लीकि बिये ही मैकु हुरि, कन ईँबद पर छारि ।

अरि गुजारि की मूँदि सों गई मूँदि की मारि ॥

इनमें काम के घमण्ड भाविका की शेट्यापों का जो इतना ध्यान रखा गया है वह कीर्तनक दृष्टिकोण का लक्षण है।

अब बरा द्वारे का दृश्य देखिए—

(१) हेरि हिरोरे गमन तें बरी बरी ली हुरि ।

बरी पाप पिप बीध ही बरी बरी हम लुरि ॥

(२) बरजे लूँही हठ बरी ना सट्टे न सट्टय ।

हुरति कति दुमकी मजक कककि कककि बचि जाय ॥

पहले दोह में तो मायिका परी को नीचे गिरते देखकर मायक ने बीच में ही पकड़ कर लूब रस चुगा। दूसरे में कमर की लकड़ पर बिछेप ध्यान दिया गया है।

सैस-संवि-संश्लेष को प्राप्त करने के लिए अशेष पुण्य की प्राप्तिप्राप्ता होती है। इसमें सामंतीय दृष्टिकोण की सतक चिन्ता ही छाट हो गई है। मूर्ध जब एक राशि से दूसरी राशि पर संक्रमण करता है तो संक्रमित होती है। पर मकर मन्त्रांति का बिछेप महत्त्व माना जाता है। इसका निर्बन्ध करते हुए बिहारी कहते हैं—

कहू कुम्पन पाइये सैस-संवि-संश्लेष ।

शाम जीवन की घोर दृष्टिपात करने पर भी वही छोट-स्वयं बिछाई पड़ता है—

सम सुखो बीत्यो बनी कबी कई उज्जारी ।

हरी हरी भरहरि खड़ी, भर भरहरि भर खरि ॥

नीच उद्धृत दोहों में सामंतीय समझावनी का व्यवहार उस काव्य के वातावरण को प्रत्यक्षीकृत कर देता है—

(१) भरने जंग के आबिके, जोवन नृपति प्रवीन ।

सम मन भिन्न विरल की, कही इच्छाप्र कीव ॥

(२) लख-आगारि सम-मुखक कहि जोवन आभिर जोर ।

यदि बदि तैं बदि बदि रक्तम की खीर भी खीर ॥

मानवता तथा बहिष्ता नायिकाओं की भरभार सम्भवर्गीय प्रवक्तृसमोपी वर्ण के सर्वथा अनुकूल है। निर्बाध प्रवक्तृ को काटने के लिए इसमें बड़कर घोर क्या सामन हो सकता था ? खीर-मिहीबनी वा खेम तो प्रेमपरक ब्रीड़ा के लिए स्वर्ण-प्रवसर उपस्थित कर देता है—

दोह खीर मिहीबनी, खेम व खेमि खयाल ।

दुरत दिखे कपटाय के सुखत दिखे अपराध ॥

पहल ही कहा जा चुका है कि बिहारी का पारम-श्रीयम मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। इस वर्ग के गहरे संस्कारों से उच्च वर्ग में प्रसिद्धि होकर भी वे अपने को मुक्त न कर पाए। मध्य वर्ग के जीवन के भी वे ही चेतन समूहों लिए हैं जो मूल्य से सम्पन्न हैं। मायके बाँटे समय मायिका

की मनोवशा गीत के समय उसकी मनोवृत्ति देवर-भामी का प्रेम-संबंध प्रादि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके आधार पर मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन को एक मजकूर मिला जाती है। बिहारी के अतिरिक्त इस काल के अन्य बहुत से कवियों ने भी इस वर्ग के प्रमत्तक प्रसंगा को अपना बंध्य विषय बनाया है। किन्तु बिहारी के वर्णन में जो संबंध तथा अभिजात दृष्टिकोण दिखाई देता है वह अन्य कवियों में नहीं पाया जाता।

नैहर जाती हुई एक मध्यवर्गीय नायिका को देखिए—

पिय बिभुरल की हुसहू हुनु बरसु जात प्योसार ।

दुरजोधन की वृत्तियति ठगल प्राप्त हृदि बार ॥

मुग्धावस्था में उसे नैहर जाते समय प्रिय के बियोग का दुःख नहीं होता था उस समय नैहर के प्रति माता-पिता तथा अपने परिवारों के प्रति विशेष ममत्व के कारण बिदा-बसा में रूप ही अधिक होता है। किन्तु अब मध्याह्न में उसे समुदाय के प्रति मोह हो गया है। किन्तु नैहर का ममत्व भी कैसे खूब सज्जा है। इसलिए वह एक प्रकार के डंड के पड़ गई है। एक घोर तो उसे प्रिय से बिभुरलने का दुःख है और दूसरी घोर मायके जाने का हर्ष भी हो रहा है। इन तरह की मनोवृत्ता प्रायः मध्यवर्ग में ही विशेष रूप से देखी जाती है।

मध्यवर्गीय परिवारों में देवर-भामी का बिनोद प्रायः बना करता है। सामान्यतः यह बिनोद बहुत ही पवित्र और सुगंध होता है। जो मरता है कि एक समय ऐसा रहा हो जब देवर-भामी को मातृमुख्य मानना रहा हो। शास्त्रीय रामायण के आधार पर हमने कुछ किया था मरना है। एक जमाना वह भी आया जब दोनों का सम्बन्ध कुछ बिनोद तक सीमित रहा। पर ऐतिहासिक दबलों का भारी देखिए—

कहत न देवर की कृतत कृतिय कबहू बरति ।

पंजर-गत संसार दिन मुक की सृष्टि जाति ॥

इस पर रत्नाकर भी ने 'घबहरन' में लिखा है— देवर अपनी भीखाई के अनुबिंद प्रेम करना चाहता है। पर भीखाई प्रतिव्रता गया चुलीया है। धन नहीं मिलता है। यदि वह देवर को गुस्सा नहीं करती तो उस भय है कि कहीं घबहर पाकर, वह उसको आश्रित्य हत्यादि न कर ले और यदि बहती

हैं तो माई-भाई में तथा दैवर दैवतानी में कमजूर होता है। इस प्रकृति में पड़ी हुई वह सुखी जाती है।

किसी मध्यवर्गीय स्त्री के लिए यह द्विधा की स्थिति बहुत ही स्वाभाविक है। सम्मिश्र कुटुम्ब में प्रत्येक व्यक्ति का यह पवित्र कर्तव्य होता है कि वह उसे बिचलित होने से बचाकर बचाता रहे। सम्मिश्र कुटुम्ब अपने आप में मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक है। अनेकानेक समस्याओं को मूक भाव से सहन करते हुए भी व्यक्ति इसकी सुरक्षा पर आकांक्ष नहीं पुरुषाना चाहता था। प्राथमिक युग में आर्थिक संकटों की मार से सम्मिश्र कुटुम्ब तेजी से टूट रहा है पर पहले स्थिति ऐसी नहीं थी। उक्त बोहे में सम्मिश्र कुटुम्बिक प्रजापति के अन्तर्गत प्रजापति की मनोरंजन का जो बिच बीचा गया है वह बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है।

प्रेम उत्पन्न होने के लिए आवश्यक है कि नायक-नायिका के मिलने का कोई अवसर मिले। मूरदास ने गोपियों और कृष्ण के प्रेम को प्रस्तुत-पुष्पित करने के लिए बहुत से अवसरों को बूझ निकाला है। बभ्रुना तट तथा कुंज-वन में उनसे प्रेम भेट हो जाता करती है। बोचाराज का अवसर भी इसके लिए उपयुक्त माना गया। मध्यवर्गीय परिवार में किसी वस्तु के नष्ट जाने पर एक परिवार का कोई व्यक्ति (सामान्यतः स्त्री) पड़ोसी के घर से उस माँग जाता है। बिहारी ने प्रेमोत्पादन में एक ऐसे अवसर का उपयोग किया है—

केव कहुक करि पीर से चिरि, चितई सुसुकाइ ।

जाई जायतु केव तिब बेई चली जमाइ ॥

माई तो भी वह कामन मैने पर नायक के हृदय में स्नेह जमा कर चली गई।

परिणाम प्रसादन और सार्जकारों के आचार पर भी बिहारी के देखे हुए समाज को ठीक मार्गों में बहाना का सकता है—निम्नवर्ग मध्यवर्ग और उच्च वर्ग का सार्जतीय वर्ग। निम्नवर्ग का आर्थिक स्तर बहुत ही नीचा था इसलिए उनके लिए कीमती वेध-भूषा अकल्पनीय थीं। स्थिरी सामान्यतः कुंज-वन आदि की माँग पड़ती थी। जमकदार टिकुनी भी वे पड़ती रहीं होंगी। यात्र भी प्राथमिक सम्यता से अपरिचित निम्नवर्गीय स्थिरी जमकदार टिकुनी

रहे हुए हीच पड़ती है। वे सलाह पर चाहे तिसक भी मपाती रही होंगी। बेरो के रूप में वे सनई के फूल का प्रयोग करती थी।

सम्पन्न की बेपयूषा भी सामान्य ही थी—मार्मिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न होने के कारण उनके लिए यही स्वाभाविक था। वे हाथ में सँवूटी जम्मा क्रम में करवनी पैरों में नूपुर, पाँव के छेपूठे में धनराज औंठियों में बिबिया पहनती रही होंगी।

उच्च वर्गीय स्त्रियों की बेपयूषा काफी कीमती होती थी। इसके लिए उनके पास धन की कमी नहीं थी। वे जरीदार कोर की साड़ियाँ 'बिनौदिया' धनबा बूँछाही' रंग के सुस्वभाव परिधान पहनती थी। वे बेबिया पहनती थी तो हारे की बड़ी हुई, नाक में सीकें पहनती थी। ठो नीलमणि से बड़ी हुई सलाह पर टीका बाराण करती थी। ठो मणि मायिक्य से संयुक्त बेसरे ऐसी पहनती थी जिनमें मोटी मूँठें थे। प्रसाधनों में कर्पूर, धनराज बंदन बुनाबदन आदि प्रयोग में आते थे।

गों गृयार का सामान्य रूप निम्नलिखित था—

बेही माछ, ठेंबोक मुँह सरीस सिखसिखे बार।

छा चोँके, राखे जरी पर सहर सिगार ॥

जिन बेपयूषाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है वे उत्कामीन जिनमें भी शिनाई पड़ती है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर भी वह प्रमाणित किया जा सकता है कि उत्कामीन समाज में जनका व्यवहार होता था।

किसी कवि की रचनाओं में वर्णित सामग्री के आधार पर उस युग को प्रत्यक्षीकृत सभी किया जा सकता है जब यह धन्वी तरह सम्पन्न निवा जाय कि उसमें से कितना परंपरा से बूझित है और कितना उत्कामीन बातावरण से। पर यह कार्य सरल नहीं। इसके लिए प्रबुद्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों का ध्यान करना होगा। कवि सामान्यतः काम्य-परंपरा में मुरझित बहुत से धर्मकारों प्रसाधनों आदि का प्रयोग करते रहते हैं। इसलिए किसी आलोच्य कवि में वर्णित समाज का वेष्टा-वोष्टा केवल बाह्यधर्मकारों और प्रसाधनों के आधार पर ही नहीं प्रस्तुत किया जा सकता।

वैदिक काव्य-परंपरा में अतिशक्ति सामग्री का उपयोग करने पर भी

कवि के दृष्टिकोण पर युग की कुछ ऐसी छाप पड़ी रहती है कि उसके चमकन पर उत्कासीन समाज की कल्प रेखा का निर्माण किया जा सकता है। यही कारण है कि किसी नास विदेय की ऐतिहासिक सांस्कृतिक स्थिति की जानकारी के लिए इतिहासकार उस नास की साहित्यिक सामग्री की भी परीक्षा करते हैं। बिहारी के ऐसे हुए समाज को इसी दृष्टि से परीक्षित किया गया है।

बिहारी का अपना दृष्टिकोण वैसा पहले ही कहा जा चुका है पुनर्-सामंतीय का। इसलिए इस वर्ग का जीवन सन्तुष्टि जितनी ईमानदारी से किया है उतनी ईमानदारी से अन्य वर्ग का नहीं। अन्य वर्ग का जीवन उतनी ईमानदारी से देखे कर नी नहीं सकते थे। इसलिए निम्न वर्ग के प्रति प्रबल माँह के प्रति जो उपहास अभिष्ट उक्तियाँ मिलती हैं वे स्वयं माँह या निम्न वर्ग की स्थिति न धरित कर बिहारी के नागर दृष्टिकोण की धर्म-व्यक्त करती हैं।

मध्यवर्गीय परिवार की कुछ ही बातें वास्तविक बात होती हैं। यदि कांय सामंतीय वर्गों से ही देखी गई हैं। मध्य वर्ग का भेदा काफी व्यापक होता है। बरेलू जीवन की गुरुत्वानिदों सीधों का सापरम्य रूप यदि उच्च मध्य वर्ग की विशेषताएँ हैं जो सामंतीय जिन्गी के मत में होती थी। पर बिहारी के समाज को देखने के लिए सामंतीय दुहासे का बराबर ध्यान रखना होगा।

प्रेमिय बोध और बिहारी

समग्र हिंदी साहित्य में रामचरित मानस को छोड़कर किसी भी ग्रंथ का उतनी लोकप्रियता नहीं मिली जिनकी बिहारी सनमई को प्राप्त हुई। शुभी गृन्थालिखता के प्रति बहुत कुछ परीच हो जान के बाद भी उसकी ख्याति में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। क्या 'सनमई' की सामल्लारिखता को उसकी ख्याति का कारण माना जा सकता है? पर चमत्कार का मुनम्मा बहुत दिनों तक नहीं बना सकता। ऐसी स्थिति में उसकी प्रसिद्धि के कारणों को सनमई गल काव्योक्तिन मूल्यां में ही सोचना होगा।

हिंदी सनमरूपी की परंपरा में बिहारी सनमई का भाष्य स्वामीय ज्ञाना हम मध्य का प्रमाण है कि हममें मध्य सनमरूपों की मयेया कुछ विशेष धारिक है।^१ हमरी टीकाओं की परंपरा भी कम मंदी नहीं है।^२ ये टीकाएँ

१—बिहारी की टीका देखो 'महाराज सनमई' * मार सनमई, 'कमल सनमई' 'बृहत् सनमई' और सनमई 'दुमरी बीहावती' आदि का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसमें जना समझा है कि वल सनमई का प्रमाण काव्यमिक युग में की प्रिस्टेन नहीं हुआ। 'बिहारी और मरीकी' में कमला मारर की किया। विबोनी हरि ओ 'बीर सनमई' पर मंगला-प्रकार कारितोचिक तथा दुमरी बीहावती पर देव प्रुरकार मिला।

२—कृष्णानाम की टीका नाम सिंह की टीका चारणदास की टीका पद्माक टनगान की दुमर-लियो वकी टीका जमर चंद्रिका टीका, राजा मीराचरारय की टीका कृष्ण कवि की कविचक्र टीका नाटिक चंद्रिका टीका जमर चंद्रिका टीका रघुनाथ मनीषम की टीका रत्नचंद्रिका टीका, हरिचरारय कीका साव कवि मनीषम

इस बात की चोटक है कि पठन-पाठन के क्षेत्र में सतसई का विशेष प्रचार था। यह सब सतसई की प्रांतीय विशेषताओं के कारण हुआ।

सतसई का कथ्य तथा सैली दोनों ही अपने पुन-सामंतीय युव-की बिशिष्टताओं से सम्बन्धित होने के कारण ईमानदारी की दृष्टि से धर्म्यतम हैं। सामंतीय ऐंडिय बोध के अनुकूल भिम बापा सैली का प्रबोध बिहारी ने किया वह एक ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद घाबे नहीं बढ़ सकी। बाध की सतसईयाँ बिहारी की अनुकूलि पर लिखी जाने के कारण बापा तावनी से घूम्य हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि परवर्ती सतसईयाँ कहीं पर भी बिहारी से घाबे नहीं बढ़ पायी। किन्तु सतसईयाँ पर समग्रता विचार करने पर बिहारी सतसई बेजोड़ सिद्ध होती है।

बिहारी सतसई के बाव यदि किसी धर्म्य क्षेत्र सतसई का नामोस्नेह होगा तो मतिराम सतसई का। बिहारी और मतिराम समग्र समसामयिक थे। एक पीढ़ी के कवि होने के नाते उनका ऐंडियबोध (Sensibility) भी मिलता जुलता था। (वह आवश्यक नहीं है कि एक समय के दो कवियों के ऐंडियबोध (Sensibility) में समानता हो ही। कभी-कभी ऐंडियबोध की बिभिन्नता के कारण एक कवि समसामयिक प्रतीत होता है तो दूसरा कई शताब्दी पहले का।) एक युग के दो कवियों में यदि वे भुवीन चेतना के प्रति जागरूक हों तो समग्र एक प्रकार का ऐंडियबोध होता है और उनका

इन नाम चन्द्रिका टीका प्रकाशचन्द्रिका टीका अमर सिंह काव्यस्य राजमकर चतुर्गुर की अमर चन्द्रिका टीका सखीराज-कवार्न जगदीश देवकीकन्दन टीका, रत्नचौरवी की टीका सखीराजकी की काव्यचन्द्रिका टीका राजमू की टीका जगन्नाथ भुविन्दार कभी की कुम्भसिखा ईशरीप्रसाद काव्यस्य कृत पुष्पसिखा सखार कवि की टीका यथाधरकी की टीका जगन्नाथ तथा गिरिधर की टीकाएँ, रत चोडूरी टीका कवीन्याप्रसाद की टीका राजमकर कृत तथा गोपाधर कृत टीकाएँ, मञ्जुबाल पति की टीका मोदुराज कृत कैलाश टीका कविप्रसन्न जगन्नाथका काव्य की कुम्भसिखा, मावार्न प्रकाशिका टीका सादेवभावे बाबा सुमेर सिंह की कुम्भसिखा कुम्भसिखा विहारी, भागुसबाब विहारी की टीका संजीवन काव्य टीका कुम्भसिखा विहारी टीका विहारी गोविनी टीका कुम्भसिखा भिम बमरराज तथा सुर्वमय्य की टीकाएँ, बमोराज की टीका चन्द्रकान्त टीका, भावार्न कुम्भ टीका भावार्न प्रकाशिका सुखराजी टीका ईश्वर कवि की सैली कथ्य टीका, कीली आनन्दीबाब की चरही टीका विहारी राजमकर टीका। (इन टीकाओं के विवरण किरण के भिम ऐंडियन जगन्नाथका रत्नाकर कृत 'कविक विहारी' पृ २२०-२२२) भाग्यकाल पाठों में और भी टीकाएँ या थी हैं।

प्रयुक्त वाक्यावली (idioms) में भी एक तरह की समानान्तरता पा जाती है। यह सब हाँसे हुए भी मस्तिष्क में न बह करता है और न वह व्यंग्य वाक्य-योजना जो बिहारी मस्तिष्क में पार्स जाती है।

बिक्रमसाहि और रामसहाय की मनमर्दों तथा बिहारी की मनमर्दों के रचनाशाल में समय-समय दो भी बपों का चलन है। एक पीढ़ी का ऐंग्लिषभाष दूसरी पीढ़ी की इच्छा का प्रतिबुद्ध भी चलन आता है। जो भाग इस परिचयन की परिनिष्ठान कर लेते हैं वे अपनी नवीन अनुभूतियों को नई वाक्यावली देना चाहते हैं। इस चेष्टा के अभाव में वे लकीर पीन्ने का अनिश्चित और कुछ नहीं कर पाते। उक्त दोनों मनमर्दों में बिहारी की वाक्यविक्रमिता मिलती है। यह अनुकरण वाक्यावली के प्रयोग तक ही सीमित है, बिहारी मनमर्दों के अन्तर्गत का अनुकरण सम्भव भी कैसे होना। वाक्यी विवेचनाओं का अनुकरण प्राप्त नहीं हो पाता। रामसहाय की मनमर्दों का सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन दृष्टव्य है—

बिहारी के अनुकरण पर बनी हुई पुस्तकों में इसी की प्रशंसा प्राप्त हुई। इसके कारण से दोहों सरस उच्चारण में बिहारी के दोहों के पास एक अनुकूल है। पर यह कहना कि ये दोहें बिहारी के दोहों में मिलाए जा सकते हैं समझना और वाक्यता से ही पुरानी दुस्मनी निवारण नहीं बिहारी की भी लोचें गिराने का प्रयत्न समझा जायगा। 'जहाँ तक वाक्य की कारीगरी और वाक्यव्यवस्था में सम्बन्ध है वहाँ तक अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है और सफलता भी हुई है। पर हाँसों का वह सुन्दर विधान वेदाङ्गों का वह मनोहर विषय भाषा का वह मोल्यव्यवस्थापियों की वह सुन्दर व्यंग्यता इस मनमर्दों में नहीं ? ...'

वाक्यविक्रम मनमर्दों के विरोधी हूँ की और मनमर्दों का विरोध सम्मान हुआ। इसकी प्रशंसा का ही कारण है—एक तो यह शृंगार मनमर्दों न हाकर और मनमर्द है जिसमें पिच्छेयन नहीं हो पाया। हमारे वाक्य का अनुकूल वाक्य-योजना भी परिवर्तित हो गई है। बिहारी की वाक्यता में पड़नेवाली 'दुन्दुभे दोहावली' जिसमें बिहारी की वाक्यवली के वाक्य व्यवस्थापियों के हाथ होते हैं, कुछ दिनों तक दीर्घवाक्यीय क्लृप्ति वाले वाक्यों का मनोव्यवस्थापन कर कुछ प्राप्त हो गई। बिहारी मनमर्दों एक विशेष युग में ही मिली या मानी दो उनसे बाद उसकी अनुकूल ही सम्भव है।

इस बात की घोषक है कि पठन-शाळ के क्षेत्र में सतसई का बिसेप प्रसार बा । नई सब सनसई की भातरिब बिसेपताछों के कारण हुषा ।

सतसई का कथ्य तथा खेती दोनों ही अपने सुय-सामंतीय सुय-की विशिष्टताओं से समन्वित होने के कारण ईमानदारी की दृष्टि से धर्मस्थ है। सामंतीय प्रिय बोध के अनुस्यू विम भाषा सती का प्रयोग बिहारी ने किया वह एक ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद आने नहीं बढ़ पाती। बार की सतसई बिहारी की अनुकूलि पर मिली जाने के कारण प्रायः तात्परी से शून्य है। इसका यह तात्परी नहीं है कि परवर्ती सतसई कही पर भी बिहारी से आने नहीं बढ़ पाती। किन्तु सतसई पर समग्र विचार करने पर बिहारी सतसई बेबोह सिद्ध होती है।

बिहारी सतसई के बाद यदि किसी अन्य मीठ सतसई का नामोल्लेख होता तो मतिराम सतसई का । बिहारी और मतिराम नवमय समसामयिक थे । एक पीढ़ी के कवि होने के नाते उनका ऐतिबोध (Sensibility) भी मिश्रता युक्त था । (यह धारणा नहीं है कि एक समय के दो कवियों के ऐतिबोध (Sensibility) में समानता ही थी । कभी-कभी ऐतिबोध की भिन्नता के कारण एक कवि समसामयिक प्रतीत होता है तो दूसरा कई सतासी पहले का ।) एक युग के दो कवियों के यदि वे सुनीन चेतना के प्रति जागृत हों तो नवमय एक प्रकार का ऐतिबोध होता है और उनका

इन नाम चन्द्रिका टीका प्रतापचन्द्रिका टीका जमर सिंह कावचन रामचन्द्र चतुरपुर
की जमर चन्द्रिका टीका लच्छीबा-कन्यार्ष भर्तृहर ईश्वरीकन्यन टीका, रत्नचोपनी को
टीका सत्सङ्गमसमी की कालचन्द्रिका टीका रामचूरी टीका लम्बान मुक्तिप्रकार नाम
की कुण्डलिका ईश्वरीप्रसाद कावचन हनु कुण्डलिका लज्जार कवि की टीका कदाचरमी
की टीका चतुर्वक् चका विविध की टीकाएँ, रत्न कोटुनी टीका जयोन्माप्रसाद की
टीका रामचन्द्र हनु रत्न रत्नचर हनु टीकाएँ, प्रदुरवाल चरि की टीका कोटुण हनु
ईश्वर टीका चन्द्रिका चन्द्रिकाप्रसाद को कुण्डलिका, भावार्थ प्रकाशिका टीका
साईचमारे बाबा सुमिर सिंह की कुण्डलिका प्रकाशकर विहारी मातुलगाव विहारी की
टीका, संजीवन काव्य टीका प्रहारी विहारी टीका विहारी वीचिनी टीका कुण्डलि
मिश्र ज्योतराज हवा दर्पमण्ड की टीकाएँ, ज्योतराज की टीका संकृत नम टीका जार्वा
प्रकाश टीका भावार्थ प्रकाशिका प्रहारी टीका ईश्वर कवि की लईका कव्य टीका, कोटी
काकनूबाक की क्यारती टीका विहारी रावाकर टीका । (इन टीकाओं के निरूपण
विवरण के लिए देखिए कनकाप्रसाद रावाकर हुए 'कविप्र विहारी १० १६०-१६१)
आजकल बाबाओं में और भी टीकाएँ आ रही हैं ।

प्रयुक्त व्यंजक (idioms) में भी एक तरह की समानांतरता पा जाती है। यह सब होते हुए भी सतिराम में न वह बसाव है और न वह व्यंजक छन्द-योजना और बिहारी सतसई में पाई जाती है।

विश्वमसाहि और रामसहाय की सतसईयों तथा बिहारी की सतसई के रचनाकाल में समयम तो सी बर्षों का अन्तर है। एक पीढ़ी का ऐन्जियबोब दूसरी पीढ़ी की इच्छा के प्रतिकूल भी बस जाता है। जो लोग इस परिवर्तन को परिमिश्रित कर लेते हैं वे अपनी नवीन अनुकूलियों को नई व्यंजकनी देना चाहते हैं। इस चेतना के प्रभाव में वे लकीर पीटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते। उक्त दोनों सतसईयों में बिहारी की अत्यधिक अनुकूलि मिलती है। यह अनुकरण व्यंजकनी के प्रयोग तक ही सीमित है, बिहारी सतसई के अन्तर्गत का अनुकरण सम्भव भी कैसे होगा। अच्छी विवेकताओं का अनुकरण प्राक् नहीं हो पाता। रामसहाय की सतसई के सम्बन्ध में आशय रामचन्द्र मुनि का कथन इष्टम्भ है—

बिहारी के अनुकरण पर बनी हुई पुस्तकों में इसी की प्रमिष्टि प्राप्त हुई। इसके बहुत से रोहे सरस उद्भासना में बिहारी के शब्दों के पास तक पहुँचते हैं। पर यह कहना कि ये रोहे बिहारी के शब्दों में बिताए जा सकते हैं समझता और भावुकता से ही पुरुषों कुसमी निकामना नहीं बिहारी को भी बीच गिराने का प्रयत्न समझा जायगा। जहाँ नव शब्दों की कारीगरी और बाल्वैदम्य में सम्बन्ध है वहीं एक अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है और सफलता भी हुई है। पर हावों का वह सुन्दर विषाद चट्टाघों का वह मनोहर चित्रण जाया का वह खीझव नौबतियों की वह सुन्दर व्यंजना इस सतसई में नहीं ?—

साधुनिक मनसईयों में बियोपी हरि की 'बीर सतसई' का विशेष सम्मान हुआ। इसकी प्रमिष्टा के दो कारण हैं—एक तो यह शृंगार सतसई न होकर बीर सतसई है जिससे विष्टवेषण नहीं हो पाया। दूसरे कव्य के अनुकूल छन्द योजना भी परिष्कृत हो गई है। बिहारी को परम्परा में पकनेवाली 'कुमार रोहासनी' जिसमें बिहारी की कारीगरी वैदम्य कमलागिरा आदि के बर्णन होते हैं कुछ दिनों तक रीतिकानी मनोवृत्ति नाम लक्ष्मणों का मनोरंजन कर मुक्त प्राय हो गई। बिहारी सतसई एक विशेष गुण में हो मिली या मजबूती की उनके बाद उसकी अनुकूलि ही सम्भव है।

इस बात की खोज है कि पठन-पाठन के क्षेत्र में सतसई का विशेष प्रसार था। यह सब सतसई की प्राचिन विद्येपताओं के कारण हुआ।

सतसई का कथ्य तथा सैली दोनों ही अपने दुर्ग-सामंतीय दुर्ग-की विविधताओं से समन्वित होने के कारण ईमानदारी की दृष्टि से सम्भव है। सामंतीय ऐश्वर्य बोध के अनुकूल जिस भाषा सती का प्रयोग बिहारी ने किया वह एक ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद घासे नहीं बढ़ सकी। बाँध की सतसई बिहारी की अनुकूलि पर लिखी जाने के कारण भाव ताकती से शून्य है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि परसई सतसई नदी पर भी बिहारी से भागे नहीं बढ़ पाती। किन्तु सतसई पर समस्त बिहार करने पर बिहारी सतसई बेजोड़ सिद्ध होती है।

बिहारी सतसई के बाद यदि किसी अन्य ओष्ठ सतसई का नामोस्मरण होगा तो मतिराम सतसई का। बिहारी और मतिराम लगभग समसामयिक थे। एक पीढ़ी के कवि होने के नाते उनका ऐश्वर्यबोध (Sensibility) भी मिलता जुलता था। (यह दावस्पक नहीं है कि एक समय के दो कवियों के ऐश्वर्यबोध (Sensibility) में समानता हो ही। कभी-कभी ऐश्वर्यबोध की विभिन्नता के कारण एक कवि समकालिक प्रतीत होता है तो दूसरा कई सताब्दी पहले का।) एक युग के दो कवियों में यदि वे पुनीत बैठना के प्रति जागरूक हों तो समान एक प्रकार का ऐश्वर्यबोध होता है और उनका

हुन नाम चन्द्रिका टीका अष्टावचन्द्रिका टीका जमर सिंह कावचर चम्पकर चतरपुर की जमर चन्द्रिका टीका सतसई-व्याख्य जगद्वैदिकोत्तम टीका रत्नवीरजी ओ टीका अस्तुभाषा की कावचन्द्रिका टीका चम्पक की टीका जम्पावसुत्रिका जमर की कुम्भजिका ईकटीप्रसन्न कावचर कुत कुम्भजिका सरदार कवि की टीका व्याकरणी की टीका जगद्वैदिक तथा विरिपर की टीकाएँ, रत ओहरी टीका जगद्वैदिकभाष की टीका रायचन्द्र कुत तथा रंगचर कुत टीकाएँ अमुरावत चरि की टीका श्रीराम हुन वैष्णव टीका चन्द्रिका भूमिकाएत ज्वाल की कुम्भजिका भाषा जगद्वैदिका टीका साहबसाहे बाबा हुमर सिंह की कुम्भजिका सुकराल विहारी आनुसंग विहारी की टीका संजीवक जम्प टीका अमुरा विहारी टीका विहारी वीरिणी टीका कुम्भजिका जिन धीरदाम तथा रत्नचन्द्र की टीकाएँ, जगद्वैदिक की टीका संकट रत्न टीका जगदीशुंकी टीका जगद्वैदिक सुकरावी टीका ईश्वर कवि की टीका जम्प टीका, जोती जगद्वैदिकभाष की प्यारही टीका विहारी रत्नाकर टीका। (इन टीकाओं के विवरण विवरण के लिए ऐश्वर्य जगद्वैदिक रत्नाकर कुत 'कविपर विहारी' १० १६०-१६१) कावचर भाषाओं में और भी टीकाएँ जा कई हैं।

प्रयुक्त शब्दावली (idioms) में भी एक तरह की समानांतरता या आती है। यह सब होते हुए भी परिवर्तन में न बह बनाव है और न बह अर्थक सम्बन्धना को बिहारी समझेंगे या पाई पाती है।

विष्णुसाहि और रामकृष्ण की समझमें तथा बिहारी की समझ के रचनाशक्ति में समानता भी नहीं बरती जा सकती है। एक पीढ़ी का वैदिकबोध दूसरी पीढ़ी की इच्छा के प्रतिकूल भी चल रहा है। जो लोग इस परिवर्तन को परिवर्तन कर लेते हैं वे अपनी नवीन अनुभूतियों को नई शब्दावली देना चाहते हैं। इस चेतना के अभाव में वे लकीर पीटने के प्रतिष्ठित और कुछ नहीं कर पाते। उक्त होना समझमें या बिहारी की अर्थव्यक्ति अनुभूति मिलती है। यह अनुकरण शब्दावली के प्रयोग तक ही सीमित है, बिहारी समझ के अन्तर्गत का अनुकरण सम्भव भी कम होता। अन्तर्गत विवेचनाओं का अनुकरण प्राप्त नहीं हो पाता। रामकृष्ण की समझ के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है—

“बिहारी के अनुकरण पर बनी हुई पुस्तकों में हमें जो प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इनके बहुत से शोधकर्ता उद्भावना में बिहारी के शोधों के पाम तक पहुँचते हैं। पर यह कहना कि वे शोध बिहारी के शोधों में मिलाए जा सकते हैं गलत और भावुकता से ही पुछनी कुसमर्थ निरालता नहीं बिहारी को भी भीषण निन्दन का प्रयास समझा जायगा। ‘जहाँ तक शब्दावली का संबंध है और शब्दावली में सम्बन्ध है वहीं तक अनुकरण करने का प्रयास किया गया है और सम्बन्ध भी हुई है। पर हाथों का यह गुनर बिबल शब्दावली का यह मनोहर बिबल भाषा का यह सीपट्ट अन्तर्गतों की यह गुनर अर्थव्यक्ति इस समझ में नहीं है—”

आधुनिक समझमें या विवेकी हरि की ‘बीर समझ’ का विशेष सम्मान हुआ। इसकी प्रतिष्ठा के ही कारण है—एक तो यह अन्तर्गत समझ न होकर बीर समझ है जिससे विवेकीय नहीं हो पाया दूसरे शब्द के अनुकूल शब्द-सम्बन्धना भी परिवर्तित हो गई है। बिहारी की परम्परा में परम्परा ‘कुमारों की शक्ति’ जिसमें बिहारी की शक्ति की शक्ति अन्तर्गतों की शक्ति के समान होते हैं हुए दिनों तक दीर्घकालीन अनुभूति वाले गुरुद्वयों का अनुरोध कर मुक्त प्राप्त हो गई। बिहारी समझ एक विशेष युग में ही निगीत का लक्ष्य की उसके बाद उसकी अनुभूति ही सम्भव है।

करते समय उनकी भावगमयता के विभिन्न वर्णों की व्याख्या करनी पड़ेगी। बिहारी का वैशिष्ट्य उनके संवेदनात्मक काव्य-चित्रों में निहित है जो व्यापक काव्य चेतना और मानसिक संवर्धन की अपेक्षा रखता है।

भावगतमक काव्य बीबी भगवतियों से संबद्ध होने के कारण पाठकों के मन पर सीधेतापूर्वक महत्त प्रभाव डालकर उन्हें आश्चर्यित करने में सक्षम होते हैं। संवेदनात्मक काव्य अपेक्षाकृत व्यापक जीवन-भूमि की पीछा रखते हैं इसलिए उनकी अनुपूर्व भी अधिक स्थिर और गहरी होती है। बिहारी के काव्य का वैशिष्ट्य उनकी संवेदनात्मक अनुपूर्व में है उनके ऐन्द्रियबोध की विवेकता में है, उनकी सम्भावनी (Idioms) के समूह प्रयोग में है।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि यदि बिहारी और इस युग के अन्य प्रतिनिधि कवियों का ऐन्द्रियबोध और सम्भावनी उस युग के अनुकूल है और वे कवि कम प्रतिभासम्पन्न भी नहीं हैं तो उन्हें प्रथम श्रेणी के महाप्राण कवियों में बिना जा सकता है? उत्तर होना नहीं। एक ओर जाने-अनजाने सभी लोग इस बात की कविताओं की गुंमार-माफुरी पर मुग्ध दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर उनके दृष्टि-संकोच बीबी बागबाग की सिकसत भी करते हैं। वास्तविकता यह है कि वे सभी कवि लक्ष्मणों और उषाहरणों दोनों में विगत पाद्यों की रक्षा करते हुए बीच पड़ते हैं। उन कविता के सभी पादार्थ शर्मन्तीय पादार्थ के मेल में होने के कारण उस घेरे के बाहर नहीं आकर पाएँ यदि व्यापक शर्मन्तीय पादार्थों को भी समस्त पाकलित किया गया होता तो भी उन्हें व्यापक भावभूमि मिल जाती।

समस्त युग की कविताओं का आलोचन करने पर कहीं भी उस घावे के दर्शन नहीं होते जो वह जीवन-आघात को मार्ग दे सके। उनके हाथ कहीं भी नवीन चिन्तन और सर्व चेतना को जल नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में यह युग

विद्यमछाहि और रामप्रहाय की मनमर्षों तथा बिहारी की मनमर्ष क
रचनाक्रम में समय का हो सौ बरों का अन्तर है। एक पीढ़ी का ऐतिहासिक
दूरी पीढ़ी का इच्छा के प्रतिकूल भी बदल जाता है। या नाग इस परिजनन
को परिचित कर लेते हैं वे अपनी नवीन अनुभूतियों को नई शब्दावली बना
कर अपना क समाज में वे नवीन पीढ़ी के अनिष्ट और दुःख

बिहारी के धनुकरण पर बनी हुई पुष्पों में दूरी की प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसका जल में बोहे मरम उद्भावना में बिहारी के दाहो के पास तक पहुँचे हैं। पर यह कहता कि ये दाह बिहारी के बोहों में मिलाए जा सकते हैं। रज्जु धीरे साबुता में हो पुरानी दुस्मनी निवारिता नहीं बिहारी को भी बीच गिराने का प्रयत्न समझा जायदा। "जहाँ नव दण्ड की बारीगरी धीरे बारीगरी में सम्भव है वहीं तक धनुकरण करने का प्रयत्न बिना गया है और सम्भवता भी हुई है। पर हाथों का वह सुन्दर बिजल बट्टियों का वह मनाहर बिजल भाषा का वह सीधे सम्बन्धों की वह सुन्दर सम्बन्धता सम्बन्ध में बनी ?—"

१-बाबाजी रामचंद्र मुखर्जी विरही मा गण का वंशिका काव्यो बरहाय १० १ वच

इस काल के दूसरे बिचित्र कवि हैं जिन्हें बिहारी की तुलना में बार बार से धामा जाता है मुख्यतः कविता सर्वे के माध्यम से धारमा-विश्वसि करते हैं। उन्होंने प्रसंग रस से अनुभव किया और उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रसंग माध्यम ग्रहण किया। इसके प्लमस्वरूप उनकी शब्दावली (इशियम) भी कुछ भिन्न हो गई। कुछ पुरानी विधेयवाच्यों को छोड़ कर दोनों कवियों की परंपराएँ प्रसंग प्रसंग की—बिहारी मुख्यतः काव्य परंपरा में पड़ते हैं तो रस रीतिबद्ध काव्य परंपरा में। इसके अतिरिक्त दोनों की जीवन दृष्टि में एक प्रकार की समानता होती हुए भी ऐशियबोध में विविधता थी। एक का ऐशियबोध बन्धुनिष्ठ था तो दूसरे का आत्मनिष्ठ। इस विविधता के कारण बिहारी की अभिव्यक्ति में एक विधेय प्रकार की सजगता और सतर्कता था यदि तो रस की अभिव्यक्ति में भावादिष्ट आश्लेष-मयता। यद्यपि दोनों के दृष्टिकोण की तुलना तो की जा सकती है पर दोनों के काव्य की तुलनात्मक दृष्टि से रचना तुलनात्मक आलोचना के साथ अभ्यास करना है।

इस संबंध में डा. नरेंद्र का कहना है—बिहारी में सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व को ग्रहण कर सम्भवतः करने की बेसी प्रपूर्व क्षमता है। बेसी रस भवना रीतिपुग के किसी भी कवि में नहीं है—परन्तु सौंदर्य में प्रकृत रसमय होने की क्षमता रस में उनसे कहीं अधिक है। समस्त रूप से विचार करते हुए रस के काव्य की धारमा बिहारी के काव्य की धारमा से अधिक समृद्ध है। काव्य चिन्ता की दृष्टि से दोनों पर समान रूप से प्रबल है—यद्यपि वहाँ भी टेकनीक दोनों की सर्वथा भिन्न है। रस की अपेक्षा बिहारी की कला अधिक उन्नत है—उन्होंने कला का माध्यम भी अपेक्षाकृत सूक्ष्म ही चुना है। स्वभावतः उनके चिन्तन का मुख्य मुद्दा है जड़त्व। इसके विपरीत रस के चिन्तन में कोमल शान्त्यर्थ अधिक है। बिहारी की भाषा रस की भाषा से अधिक प्रौढ़ है। उसकी सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि अत्यंत विकसित तथा सम्यक्मुख प्रामुख है। उधर रस की भाषा में अंकुश बंधीत और प्रीतिरस अधिक है। यद्यपि चिन्ता रूप में दोनों के सापेक्षिक महत्त्व का निर्णय निर्णायक की सख पर ही निर्भर है^१। किन्तु जहाँ तक काव्य के उत्कर्षाधिक्य

१—डा. नरेंद्र रीतिबद्ध की प्रविष्ट तथा रस और

^२ कला

का लक्ष्य है वह भी निर्मापक की रजि पर ही निर्भर है। व्यक्तिबारी को बिहारी का काव्य प्रसिद्ध काव्य-गुण-समन्वित माधुर्य पढ़ना तो रसवादी की देव का। इसीलिए प्रार्थन में ही इसका संकेत किया जा चुका है कि ऐंग्लियबोय की प्रसमानता के कारण दोनों की तुलना शोचित्यपूज नहीं मानी जा सकती।

नवितान बिहारी और देव के मध्यवर्ती हैं। उनमें प्राथमिक रूप से नागरिक वर्गता और उत्कर्षता दोनों हैं। उन्होंने आत्मामिथ्यता के लिए दोनों प्रकार के माध्यमों—शोहा तथा कविता-संवेद्या—को ग्रहण किया है। पद्याकर की काव्यानुभूति पारिजमती मजबूत है पर देव की लच्छु भावा की खुशी का उनमें भी धमाक है। इस बात में नवीसिकन परिपक्वता बिहारी में ही प्राप्त होती है।

ऐंग्लियबोय (Sensibility) की विविधता के कारण अभिव्यक्ति की पद्धति में जो भेद पाता है उससे कवियों की अपनी प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष विशेषताएँ उद्घाटित की जा सकती हैं। किन्तु यदि बिहारी के ऐंग्लियबोय के भेद का स्पष्टीकरण कर लिया जाय तो उनके मूलानुचितन में अधिक सहस्यता मिलेगी।

किसी व्यक्ति को बाह्य जगत का बोध किसी न किसी इन्द्रिय के माध्यम से होता है। इसी के आधार पर स्मृतियों और कल्पनाओं का निर्माण होता है। पर वह स्थान रखना चाहिए कि मानवीय इन्द्रियाँ कैमरे का लेंस नहीं हैं जो बाह्य वास्तुत्यों को व्यों का व्यों बतार के। वह प्रसा (Perception) परक ज्ञान ज्योतीश्वरी के ज्ञान से भिन्न होता है। व्यक्ति की विविधताएँ और वैयक्तिक विशेषताएँ बाह्यबोध को बहुत कुछ नए रूप में प्राप्त होती हैं। इसीलिए प्रसारक बोध को नवीसिकनियों ने पारिजम ज्ञान से अधिक माना है यह एक मानसिक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति के अन्तरजीवन की परत होती है।

हम ऐंग्लियबोय की जो प्रतिनिधिता होती है वह मुख्यतः दो प्रकार की होती है—अवेकालिक तथा आवेकालिक। अवेकालिक प्रतिनिधिता का संबंध समय भ्रमण और संस्कृति से होता है तो आवेकालिक प्रतिनिधिता का संबंध वैयक्तिक जगत से होता है। बिहारी के अनिर्दिष्ट रीतिव्यवस्था के रूप प्रतिनिधि कविता में आवेकालिकता का प्राधान्य है। उन कवियों की तुलनात्मक विवेचना

करते समय उनकी आवेगमयता के विभिन्न दलों की व्याख्या करनी पड़ेगी। बिहारी का वैशिष्ट्य उनके संवेदनात्मक काव्य-चित्रों में निहित है जो व्यापक काव्य चेतना और मानसिक संवटन की अपेक्षा रखता है।

आवेगात्मक काव्य जैसी मनोवृत्तियों से संबन्ध होने के कारण पाठकों के मन पर घोरतापूर्वक बहुत प्रभाव डालकर उन्हें आर्तबोधित करने में सक्षम होते हैं। संवेदनात्मक काव्य अपेक्षाकृत व्यापक जीवन-भूमि की पीठिका रखते हैं इसलिए उनकी अनुपूर्व भी अधिक स्थिर और बहुरी होती है। बिहारी के काव्य का वैशिष्ट्य उनकी संवेदनात्मक अनुपूर्व में है उनके ऐन्द्रियबोध की विवेकता में है, उनकी संस्कारबन्धी (Idioms) के अनुष्ठे प्रयोग में है।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि यदि बिहारी और इस युग के अन्य प्रतिनिधि कवियों का ऐन्द्रियबोध और संस्कारबन्धी उस युग के अनुकूल है और वे कवि कम प्रतिभासम्पन्न भी नहीं हैं तो उन्हें प्रथम श्रेणी के महाप्राय कवियों में गिना जा सकता है? उत्तर होगा नहीं। एक ओर जाने-अनजाने सभी ओर इस काल की कविताओं की शृंगार-साधुरी पर मुग्न दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर उनके दृष्टि-संकीर्ण जैसी वाग्द्वार की शिकार्य भी करते हैं। वास्तविकता यह है कि वे सभी कवि सज्जनों और उदाहरणों दोनों में विभक्त घावघों की रक्षा करते हुए बीज पड़ते हैं। उन कविता के सभी घावघों सामंतीय घावघों के मैल में होने के कारण उस घेरे के बाहर नहीं भौंक पाते यदि व्यापक सामंतीय घावघों को भी समझत आकलित किया गया होता तो भी उन्हें व्यापक भावभूमि मिल जाती।

समस्त युग की कविताओं का आलोचन करने पर यहाँ भी उस आवेग के वर्धन नहीं होते जो रूढ़ जीवन-चार को धार्य है सके। उनके हाथ कहीं भी नवीन चिन्तन और सर्वव्यापक जीवन चेतना को बल नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में यह युग आत्मप्राय कवियों का युग ही कहा जावेगा।

